विन्ध्या बाबू

सन्तोषनारायण नौटियाल

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

लेखक की अन्य रचनाएँ

उपन्यास

तीस दिन

हरिजन

कहानी

चवन्नी वाले

तराजू और बट्टे

साँझ हुई पंछी घर आ

रेडियो रूपक

बेटी गाँव की

पंचायत का न्याय

नाटक

चाय-पार्टियाँ (पुरस्कृत)

ज्ञान-विज्ञान

चन्दामामा का देश (पुरस्कृत)

तुम्हारे आस-पास की दुनिया (दो भाग)

VINDHAYA BABU
(Humorous Novel)
by
Santosh Narain Nautial
Rs. 2.50

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज़ खास, नई दिल्ली
माई हीरां गेट, जालन्धर
चौड़ा रास्ता, जयपुर
बेगमपुल रोड, मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
महानगर, लखनऊ-6
रामकोट, हैदराबाद

मूल्य : दो रुपए पचास नए पैसे
प्रथम संस्करण : 1963

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

उपन्यास की कहानी

बात सन् तरेपन की है। उन दिनों मै लखनऊ में नियुक्त था। दोपहर में इडिया कॉफ़ी हाउस मे एक प्याला कॉफ़ी पीने का नियम-जैसा बन गया था। हम लोगों की अपनी एक टोली थी और बैठने का स्थान निश्चित था। एक दिन एक सदस्य ने दूध की आलोचना की तो एक अन्य सदस्य बोले—

"अरे मियाँ, पी जाओ चुपचाप। अच्छा दूध तो अब आँख मे डालने को भी नही मिलता।"

तीसरे सदस्य ने कहा कि अच्छा दूध तो तभी मिल सकता है जब अपने आप गाय या भैंस पाली जाय। दूसरे सदस्य ने कहा कि गाय खरीदने से ही अच्छा दूध मिल जायगा, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। अच्छा दूध तो जब बछिया को पाल-पोसकर गाय किया जाय और उसे आरम्भ ही से उचित भोजन दिया जाय।

कॉफ़ी हाउस की बात तो आई-गई हो गई किन्तु यह बात मेरे मस्तिष्क में लगभग एक वर्ष तक घूमती रही और तब सन् चव्वन में 'श्री विन्ध्य बिहारी लाल उर्फ़ विन्ध्या बाबू, रिटायर्ड ऑफिस सुपरिंटेण्डेण्ट' का जन्म हुआ। जन्म के समय उनकी आयु लगभग साठ वर्ष थी।

विन्ध्या बाबू को लेकर मैने सबसे पहली कहानी 'विटामिन-युक्त दूध' लिखी जो 'सरिता' मे सन् चव्वन में छपी। तब से लेकर आज तक विन्ध्या बाबू की लगभग एक दर्जन कहानियाँ छप चुकी है। विन्ध्या बाबू जब कहानियों के नायक बन चुके तो उन्होंने उपन्यास का नायक बनना चाहा और वे अपनी इस भूमिका मे आपके सामने है। उपन्यास लिखने में कहानियों में प्रकाशित सामग्री का भी उपयोग किया गया है।

यों तो यह उपन्यास हास्य रस का है—कम से कम मुझे यही आशा है—किन्तु इसमें जो समस्या अन्तजल की भाँति प्रवाहित होती रहती है वह हँसी में टालने योग्य अथवा टलने वाली नही है। वह समस्या है अवकाश-प्राप्त बूढ़ों की। अवकाश-प्राप्त से मेरा तात्पर्य केवल उन्ही बूढों से नही है जो एक निश्चित आयु के पश्चात् नौकरी अथवा व्यापार से अलग हो गये है बल्कि उन सब वृद्धों—जिनमें वृद्धाएँ भी सम्मिलित है—से है जिनके सामने काम कोई नही है किन्तु समय बहुत है।

बूढे व्यक्तियों की समस्या आज पूरे विश्व की समस्या बनी हुई है किन्तु पाश्चात्य देशों मे जहाँ परिवार की परिभाषा तथा आकार भिन्न है तथा पारिवारिक बन्धन उतने दृढ नही है, जितने कि पूर्व में, यह समस्या अत्यन्त उग्र रूप धारण किये हुए है इसीलिए वहाँ की सरकारे इस पर पूरी जागरूकता से ध्यान दे रही है और इसका समाधान ढूँढ रही है, फिर भी समस्या उग्रतर होती जा रही है। वहाँ बुढ़ापे की पेंशन है, वृद्धावास है, अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ है जो वृद्धों की देख-रेख, चिकित्सा आदि करती हैं, फिर भी आए दिन समाचार-पत्रों में पढ़ा जाता है कि कोई अकेला बूढ़ा या बुढ़िया पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक अपने कमरे में मरा पड़ा रहा या मरी पडी रही किन्तु लोगों को तब पता चला जब दुर्गन्ध आने लगी।

हाल ही मे कोपनहेगन में वृद्धावस्था की समस्याओं का अध्ययन करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सघ की बैठक में इस समस्या पर विचार किया गया। पता चला कि ब्रिटेन मे पैसठ वर्ष से अधिक आयु वाले बीस प्रतिशत पुरुषों तथा तेंतीस प्रतिशत स्त्रियो को एकाकीपन का कष्ट है और ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है, एकाकीपन की भावना भी बढती जाती है।

हमारे अपने देश में यह समस्या उठ चुकी है और शीघ्र ही भयंकर रूप धारण करने वाली है किन्तु आश्चर्य तो यह है कि चींटियों, बन्दरों, कुत्तों और कागों—गाय को तो छोड़ ही दीजिये—तक के दुख से दुखी रहने वाले हम भारतीय अपने बूढ़ो के लिए बहुत कम—लगभग कुछ नही—कर रहे है।

सन् इकसठ की भारतीय जनगणना के अनुसार देश में पैसठ वर्ष तथा उससे अधिक आयु वाले व्यक्तियों की संख्या एक करोड़ चालीस लाख है जिसमें सत्तर वर्ष तथा इससे अधिक आयु वाले व्यक्तियो की ही संख्या सतत्तर लाख है। केवल बंगाल में शतायु (सौ वर्ष की आयु वाले) व्यक्तियों की सख्या सात हज़ार है।

अनुमान है कि सन् इकहत्तर तक देश में सत्तर वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों की संख्या लगभग एक करोड़ चार लाख (उनचास लाख पुरुष, पचपन लाख स्त्रियाँ) हो जायगी। बूढ़े व्यक्तियों में से अधिकांश ऐसे है जो कोई भी जीविका न कर रहे हैं, न शायद कर सकते है।

हिन्दू संयुक्त परिवार जैसी संस्था मानव-जाति के इतिहास में दूसरी नही हुई। यह बुढ़ापे और बीमारी का बीमा था। संयुक्त परिवार का सदस्य मर भी जाता था तो उसकी पत्नी तथा बच्चो की समस्या पूरे परिवार की समस्या थी। किन्तु हिन्दू संयुक्त परिवार नगरों में तो प्रायः मर ही चुका है और गाँवों में भी तेजी से मर रहा है। उसकी मृत्यु कुछ तो आन्तरिक रोगों से हो रही है, कुछ बाह्य आघातों से।

संयुक्त परिवार में घर के सबसे बूढ़े व्यक्ति (पुरुष तथा स्त्री) का जो निरंकुश शासन चला आ रहा था, उसके विरुद्ध कभी न कभी तो विद्रोह होना ही था। जब तक पिता जीवित है तब तक उसके बेटे, चाहे वे स्वय पिता, दादा, परदादा हो चुके हों, किसी भी मामले में जुबान न हिला सके तथा बहुएँ स्वयं बूढी होने पर भी सास के सामने न बोल सके—यह कब तक चलता? धर्म के जो बन्धन पहले थे—बडों की अवज्ञा करना, माता-पिता का अनादर करना घोर पाप है—वे शिथिल पड़ चुके हैं। तो जब समर्थ और विशेषत: कमाने वाले बेटे माँ बाप को ही नहीं पूछते तो दादा-दादी या और भी बूढो का तो कहना ही क्या !

फिर नौकरीपेशा लोगों के लिए हमारी स्वदेशी सरकार तक ने परिवार की जो विलायती परिभाषा—पति-पत्नी तथा वैध सन्तान—अपनाई, उसने भी माता-पिता को अपने सरकारी बेटों से बेगाना बना दिया। कुछ विषयों मे—किन्तु केवल कुछ ही में—माता-पिता भी परिवार की परिभाषा में आते है किन्तु पूर्णत: निर्भर, अवयस्क भाई-बहन भी सरकारी व्यक्ति के 'परिवार' के सदस्य नहीं हैं। जो परिवार व्यवसाय करते थे उनमें आयकर (इन्कम टैक्स) ने बँटवारा करा दिया। जब से प्रिवी कौंसिल ने सर सुन्दरसिह मजीठिया बनाम कमिश्नर ऑफ इन्कम टैक्स के मामले में निर्णय किया कि हिन्दू संयुक्त परिवारों में आंशिक बँटवारा (जिसके अनुसार एक हिन्दू संयुक्त परिवार रहन-सहन, खान-पान तथा अन्य सम्पत्ति के लिए संयुक्त रहता हुआ भी परिवार के केवल व्यापार का बँटवारा करके उसे परिवार के सदस्यों की साझेदारी के रूप में चला सकता

है) हो सकता है, तब से परिवारों के आंशिक बँटवारों की तो बाढ़-सी आ गई। मोटी आय वाले परिवारों के आयकर में बहुत कमी हो गई। इससे पैसा तो बचा किन्तु परिवार उजड़ गए, क्योंकि यह देखा गया है कि जहाँ एक बार आंशिक बँटवारा हुआ, फिर पूर्ण बँटवारा होने में केवल समय का प्रश्न रह जाता है, सन्देह कुछ नहीं।

सम्पत्ति-कर, मृत्यु-कर, ज़मींदारी उन्मूलन, भूमि नियंत्रण आदि ने भी परिवारों को तोड़ने में योग दिया।

इन कारणों के अतिरिक्त जिस तेजी से देश में नगरीकरण हुआ तथा हो रहा है और उसके साथ मकानों की तंगी, मँहगाई, अभावों आदि की जो समस्याएँ सामने आई हैं उन्होंने भी परिवारों को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसका फल यह हुआ कि बूढ़े अपने बच्चों से अलग हो गए। एक परिवार के स्थान पर कई-कई परिवार हो गए, खर्च बढ़ गए और परिवार के सदस्य एक-दूसरे की भूख मिटाने में असमर्थ हो गए। बूढ़े, जो तन तथा धन से गरीब थे, हानि में रहे। आज प्रत्येक गाँव, कस्बे तथा नगर में ऐसे बूढ़ों—अकेले अथवा दम्पतियों—की संख्या बढती जा रही है जो अपने तथाकथित भरे-पूरे परिवार होते हुए भी एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए केवल मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे है।

इसमें हानि केवल बूढ़ों की हुई है, ऐसा नहीं है। संयुक्त परिवारों के बच्चे धर्म, सामाजिक आचरण, गुरुजनों का आदर, छोटों से प्यार, सहिष्णुता, प्रारम्भिक शिक्षा आदि का ज्ञान बड़े-बूढ़ों से ही पाते थे। परियों, भूतों, राक्षसों, राजकुमारों, देवताओं की कहानियाँ नानी या दादी ही सुनाती थीं। आज के पिता को, जो सवेरे पाँच बजे से रात के नौ बजे तक केवल जीवित रहने-भर का प्रबन्ध करने में व्यस्त है, बच्चों के आचरण तथा उनकी शिक्षा पर ध्यान देने का अवकाश कहाँ। फलतः आज के चाय और बनस्पति पर पलने वाले बच्चे मन-मस्तिष्क से भी बनस्पति मार्के के हैं। आज के युवक की अनास्था तथा उच्छृंखलता का एक बड़ा कारण संयुक्त परिवारों का ह्रास होना किस सीमा तक है, यह एक शोध का विषय हो सकता है।

इस समस्या का समाधान क्या है ? मेरा सच्चा उत्तर यह है कि मैं नहीं जानता। हिन्दू संयुक्त परिवार तो मरणासन्न है, उसे किसी भी औषधि से स्वस्थ नहीं किया जा सकता। आने वाली दो-एक पीढ़ियाँ अभ्यासवश बड़े-बूढ़ों का कुछ ध्यान रखेंगी

किन्तु तत्पश्चात् ? और आज भी परिवार द्वारा उपेक्षित साधनहीन, सम्पत्ति-हीन, क्षीणकाय, रुग्ण, असहाय उन बूढो का क्या हो जिन्होंने अपने जीवन के श्रेष्ठ वर्ष अपने परिवार अथवा अपने देश के लिये दिए थे ?

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, केवल दो राज्यों—उत्तर प्रदेश तथा मद्रास—मे वृद्धायु पेंशन चालू है। यह प्रयास प्रशसनीय है किन्तु है समुद्र में बूँद के बराबर। मद्रास में पैंसठ वर्ष से ऊपर आयु वाले व्यक्ति को बीस रुपये मासिक मिलता है। इससे आज की मँहगाई में क्या होता है। इसके अतिरिक्त पेट की भूख से अधिक भयकर है मन की भूख। विदेशों में देखा गया है कि वृद्धावासो में रहने वाले बूढ़े चिडचिड़े, झगड़ालू, उदास तथा रुग्ण रहते है किन्तु जब उन्हे ऐसे आवासों मे रखा गया जहाँ परित्यक्त तथा असहाय नारियाँ तथा अनाथ बच्चे थे और उन्हें एक-एक परिवार जैसी इकाइयों में रखा गया तो जैसे उन सबों को नया जीवन मिल गया। जब वे मरे भी तो घृणा और विरक्ति मे नही, प्रेम में मरे।

इस युग की समस्या मैने रखी, समाधान आप खोजे। जहाँ तक मेरे विन्ध्या बाबू का प्रश्न है वे अपने तिहत्तर वर्षों के बावजूद युवा है और नये-नये अनुभवो की खोज मे है। समय पर आपके सम्मुख प्रस्तुत होगे।

मै 'सरिता' के सम्पादक-प्रकाशक श्री विश्वनाथ जिन्होने 'सरिता' में प्रकाशित सर्वाधिकृत सामग्री का उपयोग करने की अनुमति दी तथा आत्माराम एण्ड सस के संचालक श्री रामलाल पुरी, जो उपन्यास के रूप में विन्ध्या बाबू को आपके सामने लाये, का आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त मै उन सज्जनों का भी आभारी हूँ जिन्होने इस भूमिका तथा उपन्यास में वर्णित तथ्यों की खोज में सहायता की।

नई दिल्ली

—सन्तोषनारायण नौटियाल

"मित्रो, मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि हम लोग इस समय, यहाँ क्यों इकट्ठे हुए हैं—आप सब उस बात से परिचित हैं। आज हमें अपने परम प्रिय, आदरणीय ऑफ़िस सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री विन्ध्य बिहारी लाल, जिन्हें सब लोग विन्ध्या बाबू के नाम से जानते हैं, को विदाई देते हुए दुख हो रहा है किन्तु साथ ही हर्ष भी है। दुख इसलिए है कि अब हम विन्ध्या बाबू के योग्य मार्ग-निर्देशन से वंचित रहेंगे और हर्ष इसलिए कि पैंतीस वर्ष के कठोर परिश्रम के पश्चात् अब वह कुछ आराम कर सकेंगे। इस ऑफ़िस की जो सेवा इन्होंने की है, आज तक किसी ने नहीं की; इन्होंने ही इस ऑफ़िस को ऑफ़िस बनाया, बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि बहुत से अफ़सरों को अफ़सर भी विन्ध्या बाबू ने ही बनाया···(तालियाँ)···विन्ध्या बाबू के मन और मस्तिष्क के गुणों का बखान नहीं किया जा सकता। उनका मृदु स्वभाव तथा सुन्दर व्यवहार हम कभी नहीं भूल सकते···"

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच विन्ध्या बाबू ने उठकर, झुककर, सुनहरे फ्रेम में जड़े, रेशम पर स्वर्णाक्षरों में छपे अभिनन्दन-पत्र को ग्रहण किया। तालियाँ फिर बजीं। विन्ध्या बाबू ने खखारकर गला साफ़ किया और कुछ कहना चाहा किन्तु गला भरा होने के कारण उनके मुख से कोई शब्द ही नहीं निकला। कहना तो वे बहुत कुछ चाहते थे। पैंतीस वर्ष का समय कुछ कम नहीं होता। जब एक अनुभवहीन युवक ने धड़कते हृदय और काँपती अंगुलियों से टाइपिंग
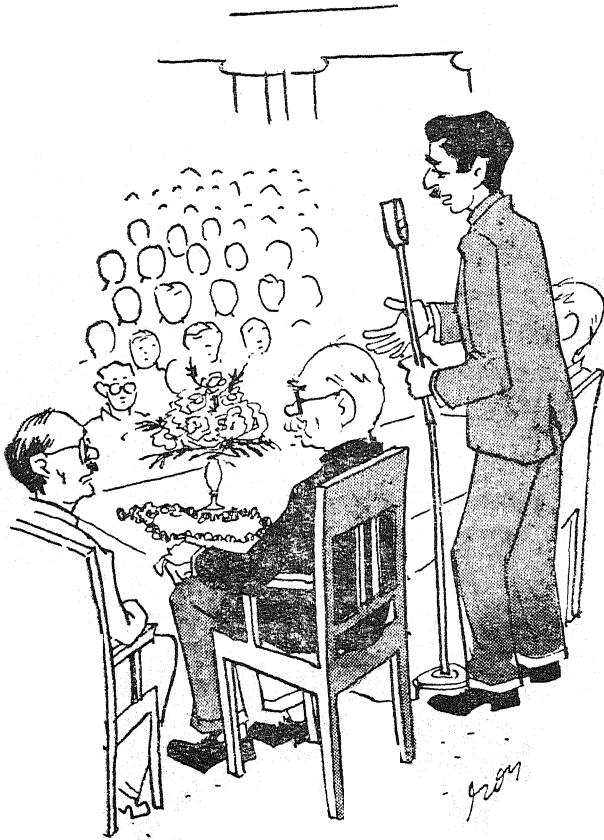
"मित्रो ! विन्ध्या बाबू के मन और मस्तिष्क के गुणों का बखान नहीं किया जा सकता···"

परीक्षा दी थी और उसमें उत्तीर्ण होकर, तीन कर्मचारियों—एक अफ़सर, एक क्लर्क और एक चपरासीवाले दफ़्तर का भार सँभाला था, तब से आज तक—जबकि वह लगभग अस्सी कर्मचारियों वाले ऑफ़िस पर ऑफ़िस सुपरिण्टेण्डेण्ट के रूप में एकछत्र राज्य करके रिटायर हो रहे थे—की मीठी-कड़ुवी स्मृतियाँ उनके मस्तिष्क में भर रही थीं किन्तु वे इतना कह पाए, "मित्रो, आपने जो सम्मान मुझे दिया है उसके लिए मैं आप लोगों का आभारी हूँ। जो कुछ मैंने किया वह केवल आप लोगों के सहयोग द्वारा। अकेला मैं कुछ भी नहीं कर सकता था। यदि कभी मैंने किसी को कड़ी अथवा अप्रिय बात कही हो तो मै उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि उस कड़ी बात के पीछे आप लोगों की भलाई ही थी···आप लोगों को छोड़कर जाते हुए मुझे कितना दुख हो रहा है······"विन्ध्या बाबू की आँखों में आँसू छलछला आए और उनका गला फिर भर आया। वह बैठ गए। कुछ देर तक इधर-उधर की बातों के पश्चात् किसी से गले मिलकर, किसी से हाथ मिलाकर, अपनी पैंतीस वर्ष की सेवाओं के प्रमाण-पत्र जैसे उस अभिनन्दन-पत्र तथा सुनहरे गोटे की माला लिए विन्ध्या बाबू घर की ओर चल दिए।

चपरासी ने ऑफ़िस के द्वार बन्द कर दिए।

2

जैसे ही विन्ध्या बाबू घर पहुँचे उनके पोतों चुन्नू और मुन्नू ने शोर मचाया, "दादाजी आ गए! दादाजी आ गए!"

"दादाजी मेरी मिठाई?" चुन्नू ने पूछा।

"दादाजी, मेरी गोलियाँ?" मुन्नू ने पूछा।

विन्ध्या बाबू ने चुन्नू को मिठाई और मुन्नू को मीठी गोलियाँ दीं और कहा, "कल से तुम लोगों की मिठाई और गोलियाँ बन्द।"

"क्यों, दादाजी ?" चुन्नू ने पूछा और मुन्नू ने केवल "ऊँ !" कहकर प्रतिवाद किया ।

"कल से मै दफ्तर नहीं जाऊँगा ।" विन्ध्या बाबू ने कहा ।

"दफ़्तर क्यों नही जाओगे, दादाजी ?"

"मै रिटायर हो गया हूँ ।"

"आपका दफ़्तर बन्द हो गया है ?" मुन्नू ने पूछा । रिटायर उसकी समझ में नहीं आया ।

"अरे, दफ़्तर बन्द नहीं हुआ, मेरी छुट्टी हो गई है ।"

"फिर दफ़्तर कब जाओगे ?"

"अब नहीं जाऊँगा ।"

"कब्बी बी नई ?" मुन्नू ने पूछा ।

"और मेरी मिठाई कौन लाएगा ?" चुन्नू ने पूछा ।

"अच्छा अब तुम खेलो । तुम्हारी दादी कहाँ है ?"

"अन्दर हैं ।" कहकर चुन्नू और मुन्नू अपनी माँ को यह समाचार देने चले गए कि दादाजी फिर कभी दफ़्तर नही जाएँगे ।

"बिन्द्रा की माँ !" विन्ध्या बाबू ने पुकारा ।

"क्या है ?" उनकी पत्नी ने आकर पूछा ।

"ज़रा यह सामान रखना ।"

"क्या सामान है ?"

"गोटे का हार है, विदाई-पत्र है । बिन्द्रा की माँ, आज मैं रिटायर हो गया हूँ ।" कहते-कहते विन्ध्या बाबू का गला रुँध-सा गया ।

"तुमने भतेरा (बहुतेरा) काम किया । अब तुम्हारे आराम करने का बखत है ।" उनकी पत्नी ने कहा । उन दोनों की बातचीत का आरम्भ तो प्रेम से ही होता था ।

"आराम करने का वक्त ? आराम करने को मुझे कौन-सी थकान

लग रही है। अब भी आजकल के नौजवानों से चार गुना अधिक काम कर सकता हूँ।"

"तो सरकार ने घर क्यों बैठा दिया ?"

"सरकार को मैं क्या कहूँ। मैं शरीर से स्वस्थ हूँ, मन से स्वस्थ हूँ और अब तो काम के अलावा और कहीं मेरा ध्यान भी नहीं जाता फिर भी मैं तो काम के लायक नहीं रहा और आजकल के लौंडे जो ग्यारह बजे दफ्तर आते हैं, दिन मे दस बार चाय पीते हैं और सिनेमा की छोरियों के नाम ले-लेकर ठंडी आहें भरते हैं, वे ज़्यादा अच्छे हैं··· खैर, यह तो संसार का नियम है···ओफ्फ़ोह, बिन्द्रा की माँ, तुममें यह बड़ी खराब आदत है कि जब देखो गप्पों में वक्त ख़राब करती हो। तुमसे यह सामान रखने को कहा था और तुम लगीं······"

"हाँ-हाँ, मैं लगी गप्पें मारने ! कह दो, रुक क्यों गए ?"

"तुमने बीच में बात काट दी, मैं कहाँ रुका ! अच्छा, अब यह रख दो।"

"ऐसे कौन-से हीरे-जवाहरात लेकर आए हो जो घर सिर पर उठा रखा है। रख दो कहीं।"

"जी हाँ, रख दो कहीं। अरे, यह हीरे-जवाहरात से भी बढ़कर हैं। हीरे-जवाहरात तो बाज़ार में खरीदे जा सकते हैं लेकिन इनके लिए पैंतीस वर्ष खून का पसीना किया, जवानी लुटा दी और···"

"आज क्या खाकर आए हो जो इतने लेक्चर दे रहे हो ?"

"तू मेरी औरत है या किसी जन्म की दुश्मन ? जब देखो मेरी बातें काटती रहती है।"

"हाँ जी, अब तो मैं दुश्मन ही हूँ। तुम्हारा घर बसाया, तुम्हारे बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया, रात को रात और दिन को दिन नहीं समझा और अब···"

"अय-हय, बिन्द्रा की माँ, तुम्हें पता नहीं क्या हो गया है, बात-बात में झगड़ा करती हो।"

"झगड़ा मै करती हूँ ?"

"अच्छा-अच्छा, मैं ही झगड़ा करता हूँ। अब तो इन्हें रख दो। सँभालकर रखना, ज़िन्दगी-भर की कमाई है।"

"क्या दिया मरों ने ! कुछ काम की चीज़ देते तो बात भी थी।"

विन्ध्या बाबू कीं झुंझलाहट भड़की किन्तु उन्होंने अपने-आपको संयत करके इतना ही कहा, "तुम्हारी समझ मे यह बात नहीं आएगी।" और कपड़े बदलने चले गए।

"बिन्द्रा की माँ, आज तो मैं ऐसे सोऊँगा जैसे कुम्हार गधे बेचकर सोता है।" कहकर विन्ध्या बाबू लेटे तो लेटे ही रह गए—सोये नहीं, नींद ही नहीं आई। रात में कितनी ही बार उठकर उन्होंने घड़ी देखी लेकिन ऐसा लगता था जैसे घड़ी भी रिटायर हो गई थी। सवेरे एक हल्की-सी नींद की खुमारी आई। जब उनकी नींद खुली तब तक धूप फैल चुकी थी। विन्ध्या बाबू एक झटके से उठ बैठे और बोले, "ओहो, कितनी देर हो गई !" फिर उन्हें ध्यान आया कि उन्हें दफ़्तर तो जाना ही नहीं था फिर देर-सवेर कैसी। वे फिर लेट गए किन्तु लेटे-लेटे भी मन नहीं लगा। वह उठ ही गए किन्तु उठकर भी समझ मे नहीं आया कि क्या करें। जब कभी कोई काम करने का विचार मन में आता, वह सोचते—अभी क्या जल्दी है। आज दफ़्तर तो जाना ही नहीं है। उन्होंने दाढ़ी भी नहीं बनाई, नहाने की तो बात ही क्या ! भोजन सदा की भाँति नौ बजे तैयार हो गया था। उनकी पत्नी ने कहा—"अजी जल्दी से तैयार हो जाओ, खाना बन गया।"

"जल्दी क्या है, मुझे कौन-सा दफ़्तर जाना है !"

"दफ़्तर नहीं जाना है तो क्या खाना भी नहीं खाना ?"

"खा लेंगे।"

"कब खा लोगे? हमें तो और भी काम हैं, कब तक रसोई पकड़े बैठी रहूँगी?"

"तुम्हारे काम के क्या कहने! मुझे पता है जो काम तुम्हें है। पड़ोस में गप्प मारने जाना होगा!"

"हाँ जी, मैं तो गप्प ही मारती हूँ, ताला तो तुम्हारे मुँह पर पड़ा है, बेचारों के मुँह से आवाज़ ही नही निकलती!"

"लगी सवेरे-सवेरे झगड़ा करने!"

"झगड़ा मैं कर रही हूँ या तुम? खाना खाने के लिए कहो तो वह भी झगड़ा..."

"अच्छा बाबा, तुम खा लो, मुझे भूख नहीं है।"

लेकिन भूख नही है कहने से काम नहीं चला। विन्ध्या बाबू ने दाढ़ी बनाई, स्नान किया और भोजन भी किया। किन्तु उस दिन के पश्चात् इस प्रकार की छोटी-छोटी कहा-सुनी प्रायः प्रत्येक दिन होने लगी।

वास्तव में विन्ध्या बाबू के अवकाश-प्राप्त जीवन के दिन काफ़ी परेशानी में बीत रहे थे। जब तक नौकरी पर रहे, केवल दो समय भोजन करने और दफ़्तर आने-जाने की चिन्ता थी। दफ़्तर में समय अच्छी तरह बीत जाता था। सवेरे के नौ बजे से लेकर शाम के सात बजे तक तो हमेशा ही और कभी-कभी अधिक देर तक का समय इसी नाम पर निकल जाता था। घर पर भी दफ़्तर की समस्याएँ—किसी की उन्नति, किसी की अवनति; किसी को उठाना, किसी को गिराना; किसी को बाहर से बुलाना, किसी का तबादला कराना; अफ़सरों से उलझना और सुलझना—साथ आतीं। जब से रिटायर हुए, जीवन में ऐसा सूनापन आ गया कि उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि उसे

कैसे भरें। हर समय बैठे सोचा करते थे। इस अकर्मण्यता ने उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाला। वैसे भी अब न युवावस्था रही थी और न इस महँगाई के ज़माने में वैसा खाने-पीने को मिलता था। वह तो कहिए कि पुराने ज़माने का खाया-पिया घी-दूध था जिससे गाड़ी किसी प्रकार चल रही थी, नहीं तो कभी की उलार हो गई होती। तो विन्ध्या बाबू का स्वास्थ्य कुछ बिगड़ चला। पहले भी सर्दियों में बहुधा बीमार पड़ा करते थे किन्तु रिटायर होने के पश्चात् बीमारी और मौसम में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा था। बिना नोटिस दिए कभी भी बीमार पड़ जाते थे।

विन्ध्या बाबू बीमार क्या पड़ते थे, एक तूफ़ान आ जाता था। हल्ला इतना मचाते थे कि घरभर परेशान हो जाता था। हर बीमारी में, चाहे वह ज़ुकाम ही क्यों न हो, विन्ध्या बाबू यह तो घोषणा करते ही थे कि उनका अन्त आ गया है। इसके अतिरिक्त अपनी चीख-पुकार और देवी-देवताओं के नाम लेकर अपने कल्पित पापों का प्रायश्चित करते हुए एक ऐसा वातावरण बना देते थे कि प्रतीत होता था कि जैसे संसार का भी अन्त हुआ चाहता है।

इस बार विन्ध्या बाबू की बीमारी का आरम्भ टाँग में दर्द और चलने-फिरने में कठिनाई से आरम्भ हुआ। पिछले कुछ दिनों से विन्ध्या बाबू को रोज़ सवेरे घूमने जाने का शौक हुआ था। बात यह थी कि सवेरे चार बजे के बाद नींद तो वैसे भी नहीं आती थी। उन्होंने सोचा कि क्यों न कुछ स्वास्थ्य-लाभ कर लिया जाय। आम के आम और गुठलियों के दाम होंगे। समय भी कटेगा और कुछ हैल्थ भी बन जाएगी। पड़ोस के एक अन्य रिटायर्ड सज्जन शर्माजी के साथ वह घूमने जाते थे। जिस दिन की यह बात आरम्भ की थी, उस दिन भी विन्ध्या बाबू घूमने को गए किन्तु कुछ ही देर बाद वापस आ गए। उनकी

पत्नी ने पूछा, "आज इतनी जल्दी कैसे लौट आए ?"

"क्या बताऊँ, बिन्द्रा की माँ, टाँग में दर्द हो रहा है, चला ही नहीं जाता।"

'मैं तो पहले ही कहती थी कि अँधेरे में घूमने मत जाया करो, किसी दिन हाथ-पैर तुड़वाकर आओगे, लेकिन तुम्हें तो तन्दुरुस्ती बनाने की लगी थी। बन गई तन्दुरुस्ती ?"

"क्या बड़-बड़ कर रही हो, न समझती हो, न बूझती हो, अपनी कहे चली जाती हो। अँधेरे में घूमने और टाँग के दर्द में क्या सम्बन्ध ?"

"अँधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़े होगे, तभी तो दर्द हो रहा है।"

"तुम्हारा तो दिमाग़ ख़राब हो गया है। मैं गिर पड़ता तो मुझे पता न चलता ?"

"तो दर्द क्यों हो रहा है ?"

"यह तो डाक्टर ही बताएगा, मुझे क्या मालूम !"

"तो जाकर डाक्टर को दिखा दो।"

"फीस कौन भरेगा ? तुम्हें तो इस बात का भी ध्यान नहीं रहता कि अब मैं रिटायर हो गया हूँ।"

"तो भुगतो फिर !" कहकर विन्ध्या बाबू की पत्नी पैर पटकती हुई चली गई।

प्रत्येक भारतीय का यह धर्म है कि वह अन्य व्यक्ति के रोग का कम से कम एक घरेलू, रामवाण नुस्खा बताए। विन्ध्या बाबू उन बिरले लोगों में से थे जो अपनी दवा अपने ही ऊपर प्रयोग करने मे भी नहीं हिचकते थे। उन्होंने पढ़-सुन रखा था कि पेट की खराबी ही सारी बीमारियों की जड़ है इसलिए उन्होने पेट ही की सफाई आरम्भ की। इसबगोल की भूसी, केस्टर ऑयल, लिक्विड पैराफ़ीन, जमाल-

गोटा, फ्रूटसाल्ट—सभी को नापा-तोला और परखा, किन्तु विन्ध्या बाबू पेट का इलाज करते रहे और टाँग का दर्द ज़ोर पकड़ता गया। वह तो वास्तव में साइटिका था। इधर टाँग का दर्द बढ़ा और उधर घरभर की मुसीबत आई—सबसे अधिक विन्ध्या बाबू की पत्नी के लिए। वह बेचारी कभी विन्ध्या बाबू की टाँग दबातीं, कभी गर्म कपड़े से सेंकतीं, कभी गर्म पानी की बोतल उनकी टाँग से लगाकर रखती और यदि एक मिनट के लिए भी उठतीं तो विन्ध्या बाबू चिल्लाने लगते। एक दिन ऐसे ही समय बोले—

"बिन्द्रा की माँ, मैं यहाँ मर रहा हूँ और तुम घूम रही हो। अरे जब मैं मर जाऊँगा तब तुम्हें फुर्सत हो जायेगी। तब खूब घूमना। हरे राम···हे राम···अब की बार मैं नहीं बच सकता। यह टाँग का दर्द मेरी जान लेकर ही जायेगा···अरे बिन्द्रा ज़रा अपने मामाजी को चिट्ठी लिख दे कि मैं मर रहा हूँ। मुँह देखना हो तो चिट्ठी को तार समझकर फौरन चले आएँ···नर्वदा को भी चिट्ठी लिख दे, बल्कि तार कर दे, लिखना बच्चों को भी ले आए। चलते-चलाते अपनी बेटी और नातियों का मुँह तो देख लूँ···और देख पड़ोस से शर्माजी को भी बुला ले। भले आदमी हैं, उनसे भी मिल लूँ···"

सुनते ही बिन्द्रा की माँ बोली—"तुम्हें तो कुछ नहीं होगा पर जो तुम्हारा यही हाल रहा तो घरवाले सब मर जाएँगे। अरे बिन्द्रा! मामाजी, नर्मदा और शर्माजी किसी को नहीं बुलाना है, जाकर डाक्टर को बुला ला।"

"बिन्द्रा, ख़बरदार! डाक्टर को मेरे पास मत लाना। वह मुझे कभी अच्छा नहीं करेगा। डाक्टर कब चाहता है कि रोगी अच्छा हो जाय। अच्छा हो जाय तो उसकी फीस क़ौन देगा। सब जानते हैं मुझे बीमा और ग्रेचुएटी का रुपया मिलने वाला है। सब लूट लेगा···डाक्टर

को मत बुलाना।" विन्ध्या बाबू चिल्लाए।

विन्ध्या बाबू के हठ के कारण डाक्टर बुलाया नहीं गया। उधर दर्द और घरवालों की परेशानी बढ़ते रहे। घर में विन्ध्या बाबू थे और उनकी पत्नी थीं। उनकी पत्नी का नाम कोई नहीं जानता, शायद विन्ध्या बाबू भी भूल गए है क्योंकि विवाह होने के एक वर्ष के अन्दर ही बिन्द्रा का जन्म हो गया था तब से वह बिन्द्रा की माँ जो बनीं तो फिर कभी किसी ने उनका दूसरा नाम नहीं सुना था। उनके पास न किसी की चिट्ठी आती थी और न वे किसी को चिट्ठी लिखती थीं, इसलिए पोस्टमैन को भी कभी उनका नाम पुकारने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसके माँ-बाप पहले ही मर चुके थे इसलिए नाम लेकर पुकारने वाला भी कोई नहीं था और विन्ध्या बाबू की जवानी के दिनों में मध्यम श्रेणी के परिवारों में पत्नियों को नाम लेकर या डियर, डार्लिंग, हनी, बेबी आदि कहकर पुकारने की प्रथा नही चली थी। बिन्द्रा के जन्म से पहले वे अपनी पत्नी को 'अजी,' 'मैने कहा,' 'सुनती हो,' 'कहाँ हैं सब" आदि सर्वनामों से पुकारकर अपना काम चला लेते थे।

विन्ध्या बाबू का एक बेटा था जिसका नाम तो था वृन्दावन विपिन बिहारीलाल किन्तु उसे सब बिन्द्रा कहते थे। लगभग चालीस वर्ष की आयु का युवक था और दफ्तर में क्लर्की करता था। घर में विन्ध्या बाबू और उनकी पत्नी दोनों के व्यक्तित्व इतने ज़बरदस्त थे कि उनके आगे बिन्द्रा एक नगण्य इकाई बनकर रह गया था। उसके दबने का एक और कारण यह भी था कि वह नौकरी लग जाने पर भी काफी हद तक विन्ध्या बाबू पर निर्भर था। एक तो मकान का किराया नहीं देना पड़ता था, फिर एक पत्नी और तीन बच्चों का खर्च उसके वेतन में चलता नहीं था। वैसे भी बिन्द्रा को अपने माता-पिता

प्यारे थे और वह कभी उनसे अलग नहीं रहा था।

बिन्द्रा की बहू की हालत तो और भी खराब थी। किन्तु इस कथन की व्याख्या करनी होगी। यह नहीं कि उसे खाने-पहनने, सास-ससुर-पति अथवा बच्चों के प्यार की कमी थी। असन्तोष के कारण कुछ और ही थे। निम्न मध्यम श्रेणी के सभी भारतीय परिवारों में यही हाल है। सास-ससुर के रहते हुए बहू का तो जैसे कोई अस्तित्व ही नहीं होता। वह तो वंश-रक्षा के लिए बच्चे पैदा करने की मशीन मात्र है। उसे अपने पति की कमाई के एक पैसे को भी अपना कहने का अधिकार नहीं। हज़ारों बहुएँ, जिनकी साँसें लम्बी आयु लेकर आई हैं, अपने कमाने वाले पति के घर में भी मज़दूरनी मात्र हैं। इसमें दोष किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, सामाजिक व्यवस्था का है। इस व्यवस्था में खराबी है किन्तु इसमें कुछ अच्छाई भी है जिसके कारण यह हिन्दू समाज में हज़ारों वर्षों से निरन्तर चली आ रही है। संयुक्त परिवार से बढ़कर सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने वाली कोई संस्था पिछले पाँच हज़ार वर्ष की सभ्यता में नहीं जन्मी है। यही संस्था ऐसी है जो बच्चों, बूढ़ों युवक, युवतियों, बेकार और बीमार की समान रूप से देख-भाल करती है। अपनी ख़राबियों तथा आर्थिक कारणों से यह संस्था उजड़ती जा रही है किन्तु इसका स्थान लेने वाली कोई संस्था जन्म नहीं ले सकी है। तात्पर्य यह कि विन्ध्या बाबू के घर में बदले हुए ज़माने के बावजूद सास राज्य वैसे ही चल रहा था, जैसे बिन्द्रा की माँ की युवावस्था में या उससे पहले विन्ध्या बाबू की माँ के समय में था। और तो और, बिन्द्रा की बहू को अपने नाम पर भी अधिकार नहीं था।

उसके माँ बाप ने बड़े प्यार से उसका नाम रखा था, यमुना किन्तु बिन्द्रा की माँ उसे जम्ना ही कहती थीं। बिन्द्रा की बहू थोड़ी पढ़ी-लिखी थी। उसने एकाध बार दबी ज़ुबान से कहा भी, "माँजी, मेरा

नाम क्यों बिगाड़ती हैं ? मेरा नाम जम्ना नहीं, यमुना है।" तो उत्तर मिला, "चल-चल, बड़ी आई मुझे बोलना सिखाने वाली ! सरम-हया तो बिलकुल रही ही नहीं।" नतीजा यह था कि यमुना उर्फ़ जम्ना सबसे पहले उठती, सारे दिन काम मे जुती रहती, सबसे बाद में सोती, सास-ससुर के सामने पर्दा करती और शायद ही कभी घर से बाहर निकलती। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि वह दुखी थी। बच्चों के लालन-पालन का पूरा भार दादा-दादी के ऊपर था, दुख बीमारी मे बड़े-बूढ़ों का सहारा था और घर में रौनक थी। बूढ़ा-बुढ़िया एक दिन को भी बाहर चले जाते तो घर काटने दौड़ता था।

विन्ध्या बाबू की एक बेटी थी, नर्मदा। उसका विवाह हो चुका था और वह अपने पति, बाल-बच्चों और घर-बार में सुखी थी।

बिन्द्रा के तीन बच्चे थे—चुन्नू, मुन्नू और तीसरे का अभी नाम-संस्करण न होने के कारण सब उसे गुड्डू कहते थे।

इस प्रकार अपने सीमित क्षेत्र में यह मध्मम श्रेणी का परिवार एक प्रकार से सुखी ही था।

तो विन्ध्या बाबू जब बीमार पड़ते थे तब यद्यपि परेशानी सारे घर को होती थी, विशेष मुसीबत बिन्द्रा को माँ की होती थी क्योंकि बिन्द्रा थोड़ा ही समय दे पाता था। सवेरे घर का काम देखता फिर दफ़्तर चला जाता। लौटकर फिर घर का काम-काज, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई में रात हो जाती थी। कुछ देर तक विन्ध्या बाबू की दवा-पानी, टाँग की मालिश आदि के बाद, दिनभर का थका होने के कारण जल्दी ही सो जाता था।

बिन्द्रा की बहू पर्दा करती थी इसलिए उसका कार्य था पानी गर्म करना, खाने-पीने की व्यवस्था आदि करना और घर का काम सँभालना।

बिन्द्रा के बच्चे एक तो छोटे थे और कुछ कर भी नहीं सकते थे किन्तु यदि कभी डरा-धमकाकर चुन्नू और मुन्नू को विन्ध्या बाबू की टाँगें दबाने के लिए बैठाया भी जाता था तो विन्ध्या बाबू उन्हें ठहरने ही नहीं देते थे।

"अरे ज़रा ज़ोर से दबा···अय-हय, मार डाला दुष्ट ने! कहाँ से ये राक्षस के बच्चे पैदा हो गए इस घर में···सारे बाल नोच दिए··· अरे, ज़रा धीरे दबा···थोड़ा ऊपर···थोड़ा नीचे···टाँग दबा रहा है या खेल कर रहा है···ऐसा झापड़ दूँगा कि मुँह टेढ़ा हो जाएगा···बिन्द्रा की माँ, भगाओ इन दुष्टों को यहाँ से। तुम्हें नहीं दबाना है तो मत दबाओ, इनसे बेगार क्यों करा रही हो···" आदि बातें सुननी पड़तीं। इसलिए इस बार की बीमारी में भी सारी मुसीबत बिन्द्रा की माँ के ऊपर आ पड़ी थी।

विन्ध्या बाबू का कमरा दूसरी मंज़िल पर था। वहाँ जाने का रास्ता घर के अन्दर से ही था। वहाँ भंगी तो जा नहीं सकता था इसलिए सफ़ाई आदि की सारी व्यवस्था भी बिन्द्रा की माँ को ही करनी पड़ती थी। अपनी हर बीमारी में विन्ध्या बाबू संसार के नाम यह सन्देश छोड़ जाना चाहते थे कि यदि आदमी को पत्नी मिले तो बिन्द्रा की माँ जैसी नहीं, तो वह कुँवारा ही रह जाय। और यदि विवाहित हो तो विधुर हो जाय।

बिन्द्रा की माँ तीन दिन-रात से विन्ध्या बाबू की टाँग पकड़े बैठी थीं। बेचारी को पलक झपकाने की भी फ़ुर्सत नहीं मिली थी। विन्ध्या बाबू भरे गले से कह रहे थे—

"बिन्द्रा की माँ, मैंने तुम्हें सदा ही दुख ही दिया है और तुम मेरी इतनी सेवा करती हो। मैं तो भगवान् से यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सात जन्म तुम्हीं पत्नी मिलो। तुम्हारी जैसी सती, साध्वी,

सावित्री के बल पर ही पृथ्वी टिकी हुई है, नहीं तो अब तक कभी की रसातल को चली गई होती···" यह कहते-कहते विन्ध्या बाबू की आँख लग गई। उनकी पत्नी धीरे से उठीं और जाकर अपने पलंग पर लेट गई। तीन दिन की थकी और उनींदी तो थीं हीं, लेटते ही सो गई।

दस-पन्द्रह मिनट या अधिक से अधिक आधा घंटे बाद विन्ध्या बाबू की आँख खुल गई। थोड़ी देर तो कराहते रहे, फिर अपने ऊपर बड़बड़ाए, "अय-हय! यह टाँग साली कटकर क्यों नहीं गिर जाती, एक ही बार छुट्टी हो जाती···मुझे मौत भी तो नहीं आती···हे भगवान् मैंने ऐसे कौन-से पाप किए थे जिनका यह फल मिल रहा है·· भगवान्! तेरे घर में बिलकुल अंधेर है···तिल-तिल करके मारने से तो अच्छा है कि एक बार ही प्राण निकाल दे···मेरे ही प्राण ऐसे पापी हैं जो निकलते ही नहीं···हे राम···!"

जब उनकी पुकार न उनकी आत्मा ने सुनी, न परमात्मा ने तो वह घरवालों पर बिगड़े, "सब लोग मजे मे खुर्राटे भर रहे हैं और मैं यहाँ मर रहा हूँ···मेरी परवाह ही किसे है? ···मैंने इस बदमाश परिवार के पीछे अपनी जान दे दी लेकिन मेरा कोई नहीं हुआ···कोई मेरा नहीं है···मैं ही गधा रहा···मज़े में खाता-पीता तो आज मेरा स्वास्थ्य क्यों बिगड़ता···मेरी तरफ से सब मर गए···"

बड़बड़ाहट सुनकर बिन्द्रा की पत्नी की आँख खुल गई। बिन्द्रा को हिलाकर बोली, "बाबूजी आवाज़ दे रहे है।"

"आवाज़ नहीं गाली दे रहे हैं।" बिन्द्रा बोला।

"तुम जाकर देखो तो सही।"

"जाकर और गाली खानी पड़ेगी।" बिन्द्रा ने कहा।

किन्तु उसी समय विन्ध्या बाबू की बड़बड़ाहट बन्द हो गई और उनके कमरे में पलंग कुछ चरमराया, फिर एक भड़भड़ाहट के साथ
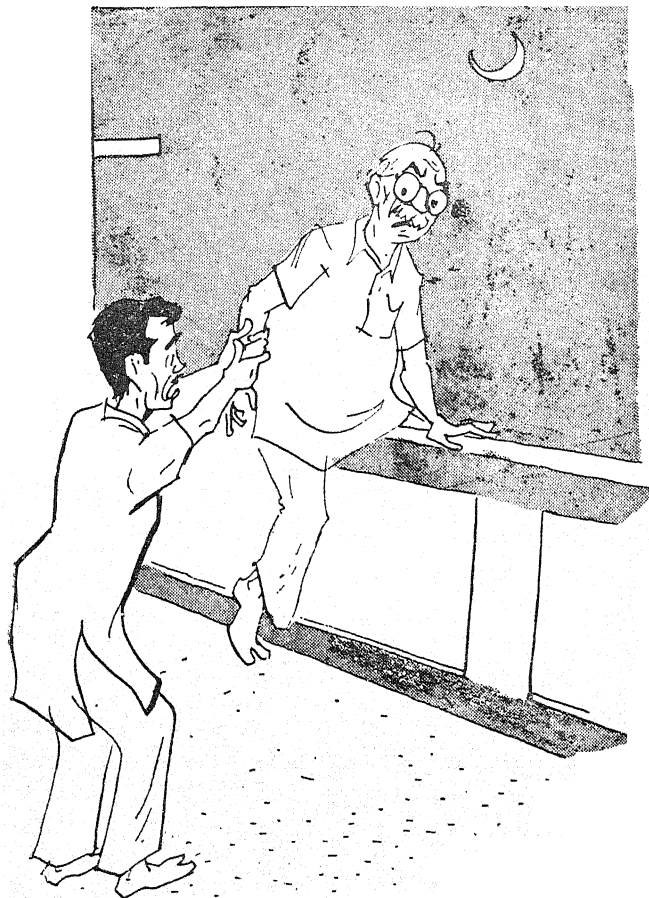
लपककर बिन्द्रा ने उन्हें नीचे घसीटा

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ के बाद बाहर खुले बरांडे में किसी के दौडने की धमधमाहट सुनाई पड़ी। बिन्द्रा पलग से कूदकर एक छलाँग में दरवाज़े के पास आया और दरवाज़ा खोलकर बरांडे में पहुँचा। देखा क्या कि विन्ध्या बाबू एक टाँग रेलिग के दूसरी ओर लटकाए नीचे छलाँग लगाने की तैयारी कर रहे थे।

लपककर बिन्द्रा ने उन्हें नीचे घसीटा और चिल्लाया, "पलंग पर लेटे-लेटे करवट बदलने में तो सारे घर को तबाह कर देते हो, अब इतना दौड़ने और छलाँग लगाने की शक्ति कहाँ से आ गई ?"

विन्ध्या बाबू बिन्द्रा के हाथ से छूटकर बरांडे के फर्श पर ही हाथ-पैर फैलाकर लेट गए। उनकी आँखे बन्द, मुँह खुला हुआ और गले से घरघराहट की आवाज़ आ रही थी। बिन्द्रा को तो जैसे काठ मार गया। घबराकर चिल्लाया—

"बाबूजी ! बाबूजी ! ! क्या हुआ बाबूजी ?"

कुछ देर चुप रहकर विन्ध्या बाबू घरघराते हुए बोले, "मैं जा रहा हूँ। बहू कहाँ है ?"

तब तक बिन्द्रा की बहू भी आ गई थी।

"बहू यह खड़ी है, बाबूजी।" बिन्द्रा ने कहा।

"आ बेटी, तेरे सिर पर हाथ फेर लूँ। मैं तो जा रहा हूँ। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम दूधों नहाओ और पूतों फलो। अरे बिन्द्रा ! चुन्नू, मुन्नू और गुड्डू कहाँ है···उन्हें उठाकर कहो कि उनका दादा जा रहा है···बेटा फिर ज़िन्दगीभर आराम से सोना···मेरे पोतों का मुँह मुझे दिखा दो।"

बिन्द्रा की बहू के मुँह से एक चीख निकली। बिन्द्रा की आँखों से आँसू बहने लगे। विन्ध्या बाबू फिर बोले, "बहू, अपनी सास को उठा

दे। वह बेचारी विधवा होनेवाली है…"

बिन्द्रा की बहू "माँजी, माँजी!" चिल्लाती हुई अपनी सास को जगाने दौड़ी।

बिन्द्रा की माँ आई बड़बड़ाती हुई, "दो मिनट को आँख लगी थी इतने में ही आफ़त आ गई। तीन दिन-रात से बैठे-बैठे कमर आम का तख्ता जैसी हो रही है। ऐसा भी क्या आदमी जो अपना ही आराम देखे…"

बड़बड़ाहट सुनकर भी विन्ध्या बाबू क्रुद्ध नहीं हुए। बड़े शान्त स्वर में बोले, "मैंने तुम्हें वास्तव में बहुत दुख दिए हैं, बिन्द्रा की माँ। मेरा कहा-सुना माफ करना। मैं जा रहा हूँ…बिन्द्रा! अपनी माँ का ध्यान रखना। खबरदार, मेरे मरने के बाद इन्हें कोई कष्ट न हो, नहीं तो मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी।"

बिन्द्रा, उसकी बहू, चुन्नू, मुन्नू, महरी सब रो रहे थे। आवाज़ सुनकर कुछ पड़ोसी भी जाग उठे थे और अपने घर से ही पुकारकर शोर का कारण पूछ रहे थे। बिन्द्रा ने रुँधे स्वर से बताया, "बाबूजी की हालत बहुत खराब है।"

विन्ध्या बाबू ने फिर कहा, "बिन्द्रा की माँ, मैं जा रहा हूँ। तुम्हें कुछ कहना है?"

"हाँ," बिन्द्रा की माँ बोलीं।

"तो जल्दी कहो! मेरे पास अब समय नहीं है। वह देखो, मेरे लिए विमान आ गया है। कहो, क्या कहना है, बिन्द्रा की माँ।"

"अन्दर जाकर चुपचाप पलंग पर लेट जाओ। बहुत नाटक हो चुका, यही कहना है।"

इतना सुनना था कि विन्ध्या बाबू ऐसे उछले जैसे बिजली के नंगे तार से छू गए हों। चिल्लाकर बोले, "तू मेरी औरत नहीं, दुश्मन है

दुश्मन ! तुझे मेरा मरना भी नाटक लगता है। हे भगवान्, अब इस घर में नहीं रहा जाता। मुझे उठा ही ले…"

रुकी हुई हँसी के मारे सबका दम घुटने लगा। किसी प्रकार हँसी रोककर सबने पकड़-पकड़ाकर विन्ध्या बाबू को उनकी इच्छा के विरुद्ध अन्दर पलंग पर लिटा दिया किन्तु वह गुस्से के मारे कपड़े ही न ओढ़ें। जैसे ही कोई रज़ाई ओढ़ाए, वह लात मारकर गिरा दें। दो-एक बार ऐसा होने पर जब किसी ने थोड़ी देर तक रज़ाई नहीं ओढ़ाई तो चिल्लाकर बोले, "सब नमकहराम हैं ! खड़े-खड़े देख रहे हैं कि मुझे सर्दी लग रही है लेकिन यह नहीं होता कि मुझे रज़ाई ओढ़ा दें।"

इसके बाद तो विन्ध्या बाबू ने जो हू…हू…आरम्भ की और दाँत किटकिटाकर काँपे हैं तो सर्दी का वह समाँ बँधा कि बर्फ को भी सर्दी लगने लगे। रज़ाई के ऊपर दो कम्बल और डाले गए, तब कहीं विन्ध्या बाबू की सर्दी दूर हुई।

3

दो-तीन दिन में विन्ध्या बाबू की टाँग का दर्द तो दूर हो गया किन्तु उस रात को रज़ाई छोड़ एकाएक बाहर जाकर ठंडे फ़र्श पर जो लेटे थे उसका फल यह हुआ कि विन्ध्या बाबू को न्यूमोनिया हो गया।

न्यूमोनिया होने पर डाक्टर को बुलाना ही पड़ा किन्तु विन्ध्या बाबू न औषधि लें न पथ्य। हारकर बिन्द्रा उनके मित्र शर्मांजी को बुला लाया।

शर्माजी ने पूछा, "विन्ध्या बाबू, दवा क्यों नहीं खाते ?"

"दवा समझ में आए तभी तो खाऊँ।"

"क्या मतलब ?"

"डाक्टर साहब से हज़ार बार कहा कि नुस्खा साफ़ लिखा करो जिससे कुछ समझ में तो आए कि क्या दवा लिखी है। बिना समझे-

बूझे दवा कैसे खा लूँ ? पता नहीं क्या खिला दें।"

"दवा का नाम पढ़कर ही आप क्या कर लेंगे ?" शर्माजी ने पूछा।

"शर्माजी, आप भी अजीब बातें करते हैं। मेरे शरीर को कौन-सी दवा लाभ करेगी और कौन-सी हानि, यह मुझसे अधिक कौन समझेगा ? इसके अतिरिक्त डाक्टरों के पास कार्बोनेटिंग मिक्सचर के सिवा और क्या रखा है। देंगे वही लेकिन जब काट लेंगे। आप ही सोचिए, तनख्वाह घटकर पेंशन रह गई है और वह भी अभी नहीं मिली है। इतनी महँगी दवाएँ कहाँ से खाऊँ ? डाक्टर साहब विटामिन की गोलियाँ खाने को कहते है, इस महँगाई मे गेहूँ के दाने जुटाने मुश्किल हो रहे हैं। मैं तो दूध पिऊँ और फल खाऊँ और बच्चे मेरा मुँह देखें—ना, यह मुझसे नहीं होगा।"

'विन्ध्या बाबू होश की बातें करो। इन्श्योरेन्स का रुपया मिलने वाला है, डाकखाने के सेविंग्स बैंक में रुपया जमा है, ग्रेचुइटी और पेंशन भी कभी न कभी मिलेगी ही, लड़का नौकरी पर लगा है फिर तुम्हें चिन्ता किस बात की है ? अरे बिना दवा खाए मर जाओगे तो सब यहीं धरा रह जाएगा। और जो तुमसे दवा के पैसे नही दिए जाते तो मैं दूँगा। तुम दवा खाओ।"

लताड़ खाकर विन्ध्या बाबू चुप हो गए। दवा, इन्जेक्शन, दूध, फल आदि लेने लगे। पास-पड़ोसी, मित्र-सम्बन्धी हाल पूछने आते तो विन्ध्या बाबू मज़े ले-लेकर अपनी बीमारी का हाल आद्योपान्त सुनाते और अन्त में कहते, "आप लोगों के दर्शन कुछ और दिन भाग्य में थे, नहीं तो मरने में क्या कसर थी।"

जिस दिन विन्ध्या बाबू को अन्न दिया गया, उन्होंने फिर बलवा मचाया, "बिन्द्रा की माँ, पेट में कुछ अफ़ार मालूम हो रहा है। देखो

शाम तक कुछ नहीं हुआ तो शायद बच जाऊँ। इस बार गड़बड़ हुई तो टायफाइड हो जाएगा और फिर बचना मुश्किल है।"

विन्ध्या बाबू की भविष्यवाणी के बावजूद प्रलय नहीं हुई और विन्ध्या बाबू स्वस्थ हो गए।

4

कुछ दिन तक विन्ध्या बाबू को समय काटने का अच्छा साधन मिल गया था। जहाँ कोई पूछ बैठता, "कहाँ रहे विन्ध्या बाबू ? बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़े।" तो विन्ध्या बाबू कम से कम एक घंटे तक उसे नहीं छोड़ते और अपनी बीमारी का ब्यौरा सुनाते। मित्रों और परिचितों ने ऊबकर कन्नी काटनी आरम्भ कर दी। वे लोग विन्ध्या बाबू को देखकर दूर ही से खिसक जाते। विन्ध्या बाबू को समय काटना पहाड़-सा लगने लगा।

शरीर में शक्ति आते ही विन्ध्या बाबू ने सवेरे का टहलना फिर आरम्भ कर दिया। तब तक शर्माजी को एक और रिटायर्ड साथी—वर्माजी मिल गए थे। तीनों बूढ़े टहलते-टहलते या मैदान में बेंच पर बैठकर घर-बार, पास-पड़ोस, बहू-बेटियों, नाती-पोतों की चर्चा करते रहते थे।

"विन्ध्या बाबू ! ज़माना क्या करके रहेगा, कुछ समझ में नही आता।" वर्माजी ने एक दिन कहा।

"क्या हुआ ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

"अजी, यही परमेश्वरी को देख लो। उसकी पोती सोलह वर्ष की हो गई है लेकिन परमेश्वरी और उसके बेटे को अभी तक उसके ब्याह-बारात की कोई चिन्ता ही नहीं। लड़की की बाढ़ अच्छी है। उसे देख-देखकर मेरा तो ख़ून सूखता जाता है।"

"सुना है वह लड़की डाक्टरी पढ़ना चाहती है। कहती है ब्याह

नहीं करेगी।" शर्माजी ने कहा।

"अजी, आजकल के लड़के-लड़कियों का कहना ही क्या। वे तो जो जी में आता है, कहते ही रहते हैं लेकिन उनकी सब बातें मान ही ली जायँ, ऐसा तो जरूरी नहीं।" वर्माजी ने टिप्पणी की।

"वह तो ठीक है लेकिन जब न सुनें तो क्या करें?" विन्ध्या बाबू ने कहा।

"अपनी ओर से तो प्रयत्न करना ही चाहिए। मेरे दोनों पोते कभी भी सात बजे से पहले सोकर नहीं उठते थे। मैं चाहता था कि चार बजे उठें। जब कह-सुनकर थक गया तो एक दिन मैंने चार बजे ही घंटी बजा-बजाकर ज़ोर-ज़ोर से भजन गाने आरम्भ कर दिए और ऊपर से पाँच मिनट तक शंख बजाता रहा। यद्यपि मैं इतना थक गया था कि अपना साँस ठीक करने के लिए मुझे पन्द्रह मिनट तक लेटे रहना पड़ा लेकिन घरभर के लोग जाग गए। उसके बाद जहाँ किसी को ऊँघता देखता, एक बार फिर शंख बजा देता...विन्ध्या बाबू! अजी, विन्ध्या बाबू! अरे भई, आज इतनी जल्दी कहाँ चल दिए?" वर्माजी ने पूछा।

परन्तु विन्ध्या बाबू रुके नहीं। उस दिन उन्हें वह अमूल्य वस्तु प्राप्त हुई थी जिसका जोड़ नहीं था। बात यह थी कि विन्ध्या बाबू बहुत दिन से सोच रहे थे कि जीवनभर दफ़्तर ही दफ़्तर सोचा किये, घर का ध्यान ही नहीं रखा। रिटायर होने पर अवकाश मिला था तो घर का सुधार करने की सूझी, किन्तु उनकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि आरम्भ कहाँ से और कैसे करें। यह बात नहीं थी कि वह घर पर चुप रहते थे। सच तो यह है कि वह बूढ़ों की परम्परा को अक्षरशः निभा रहे थे। प्रत्येक विषय पर सही या ग़लत—क्षमा कीजिए, बूढ़ों की कोई बात ग़लत तो हो ही नहीं सकती—सम्मति हर

समय देना वह अपना कर्तव्य समझते थे और अपनी इच्छा अथवा आज्ञा की पूर्ति और पालन में देर होते ही कुड़कुड़ करने लगते थे। फलस्वरूप घर में कुड़कुड़ाहट की एक अविराम धारा प्रवाहित होती रहती थी।

इस कुड़कुड़ाहट से विन्ध्या बाबू को मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं होती थी। वह चाहते थे कि कोई ऐसी बात हो जिस पर आतिशबाज़ी हो—असली आतिशबाज़ी, रियल फ़ायर वर्क्स—जिसमें ज़रा बादल की गरज हो, बिजली की कड़क हो और वज्र की कठोरता। सोचते-सोचते टहलने जाने पर भी बेचारे दुबले होते जा रहे थे। बहुत दिन बाद उस दिन राह सूझी थी।

बिन्द्रा को सवेरे देर से उठने की आदत थी—यही उठता था सात बजे तक। विन्ध्या बाबू जब घर की ओर चले उस समय छः बजने में कुछ मिनट थे। वह बिन्द्रा को पाठ पढ़ाना चाहते थे। किन्तु बिन्द्रा तक पहुँच भी न पाए थे कि एक घटना ने उनका मूड बिगाड़ दिया। बात यह हुई कि जिस समय विन्ध्या बाबू घर पहुँचे, ग्वाला दूध की बाल्टी लिए खड़ा था और बिन्द्रा की माँ उसे दूध में पानी मिलाने के लिए डाँट रही थी। विन्ध्या बाबू दूधवाले से उलझ पड़े।

"तुम फोकट के पैसे लेते हो।"

"फोकट से क्या मतलब? दूध नहीं देते?" ग्वाला बोला।

"दूध देते हो या पानी? रोज़ यही रोना रहता है।"

"बाबू, हमें भी यह रोज़-रोज़ की झाँय-झाँय अच्छी नहीं लगती। आप अपना कोई और ग्वाला देख लीजिए।"

"देख ही लेंगे, ग्वालों की कोई कमी है? अरे, जिसे पैसा डालेंगे, वही भागा हुआ आयेगा। तुम अपनी सोचो।"

"हमारे लिए भी ग्राहक बहुत हैं..."

"चुप रह, बदमाश! मुँह लगता है..."

विन्ध्या बाबू की पत्नी उन्हें खींचकर अन्दर ले गई। ग्वाला भी बड़बड़ाता हुआ चला गया।

विन्ध्या बाबू ने पुकारा, "बिन्द्रा ! ओ बिन्द्रा!"

बिन्द्रा तब तक सो ही रहा था। उसकी माँ ने कहा, "अजी, क्या है ? सोने क्यों नहीं देते उसे ?"

"तुम चुप रहो। तुम्हीं ने उसे बिगाड़ रखा है।"

"क्या बिगाड़ दिया मैंने ?"

"अब तक अहदियों की तरह पड़ा सो रहा है और पूछती हो क्या बिगाड़ दिया !"

"सोये नही तो और क्या करे ?"

पत्नी ने ऐसी मूर्खता की बात पूछी थी कि विन्ध्या बाबू की समझ में ही नहीं आया—बल्कि यह कहना ही उचित होगा कि उन्होंने यह सोचने की भी आवश्यकता नहीं समझी—कि क्या उत्तर दिया जाय।

इस हल्ले-गुल्ले से बिन्द्रा की नींद टूट गई। उसने अलसाए स्वर में पूछा, "क्या है, माँ ?"

माँ के बोलने से पहले विन्ध्या बाबू बोले, "दोपहर तक पड़ा सोता रहता है और पूछता है क्या है ?"

"अभी तो सात भी नहीं बजे !" बिन्द्रा ने कहा।

"यह सोने का समय है ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

"तो और क्या करूँ ?" बिन्द्रा ने पूछा।

फिर वही मूर्खतापूर्ण प्रश्न ! माँ-बेटे दोनों एक-से थे। विन्ध्या बाबू अपनी मूँछे चबाने लगे। तभी बिन्द्रा ने अँगड़ाई ली और इस क्रिया में उसने अपने हाथ ऊपर किए तो बनियान भी ऊपर खिसक गया और पसली की हड्डियाँ माँस के नीचे से झलक उठीं। विन्ध्या बाबू को उत्तर मिल गया। बोले—

"और क्या करे, सवेरे उठकर कसरत ही किया कर। ज़रा अपनी उम्र देख और अपना शरीर देख। एक-एक हड्डी चमकती है। तेरी उम्र में जब मैं था तो दो-दो सौ दण्ड-बैठक लगाता था। जा, हाथ-मुँह धोकर कसरत कर।"

एक बार तो बिन्द्रा चुप रह गया किन्तु था आखिर विन्ध्या बाबू का ही बेटा। बोला, "तुम दंड-बैठक लगाते थे तो घी-दूध कितना खाते थे। यहाँ तो घी आँख में डालने को भी नहीं मिलता और दूध के दर्शन सिर्फ चाय में होते हैं। बनस्पति और चाय के ऊपर कसरत करके टी० बी० से थोड़े ही मरना है!"

बिन्द्रा की बात ने विन्ध्या बाबू के मुँह पर ताला लगा दिया। वैसे तो कोई भी जवान आदमी कभी भी ठीक और मानने योग्य बात नहीं कहता किन्तु बिन्द्रा की बात मन में गड़ गई। थोड़ी ही देर पहले ग्वाले से भी झड़प हुई थी। विन्ध्या बाबू सारे दिन घी-दूध सोचते रहे और यहाँ तक हाल हुआ कि और रातों को जो दो-चार घंटे नींद आ जाती थी, उस रात वह भी नहीं आई। रात को लगभग दो बजे उन्होंने अपनी पत्नी को पुकारा, "बिन्द्रा की माँ!"

कोई उत्तर नहीं मिला। उन्होंने फिर पुकारा, "बिन्द्रा की माँ!"

"हूँ।"

"सो रही थीं क्या?"

"ना, झक मार रही थी!"

"बिगड़ती क्यों हो?"

"जरा आँख लगी थी, जगा के रख दिया। फिर पूछते हो बिगड़ती क्यों हो?"

"सुनो तो।"

"क्या है?"

"बिन्द्रा ठीक कहता था।"

"क्या?"

"घर में घी-दूध होना आवश्यक है।"

"हे मेरे राम! यही समय है इस बात का? सवेरे नहीं कर सकते?"

"मुझे नींद नहीं आ रही है।"

"लेकिन मुझे तो आ रही है। अब सोने दो।" कहकर विन्ध्या बाबू की पत्नी करवट बदलकर सो गई।

5

यह तो सर्वसम्मति से निश्चित हो गया कि घर में घी-दूध होना चाहिए और घी-दूध के लिए किसी न किसी पशु का होना आवश्यक था किन्तु समस्या यह हुई कि कौन-सा पशु पाला जाय। वैसे तो जितने भी स्तनपायी जीव हैं, वे सब दूध देते हैं और उनमें से बहुतों का दूध मनुष्य उपयोग भी करता है परन्तु विन्ध्या बाबू के परिवार ने कुल तीन-चार पशुओं पर ही विचार किया। याक, ऊँट और रेनडियर तो इसलिए छोड़ दिये गए कि उनके अनुकूल जलवायु विन्ध्या बाबू के घर पर नहीं था और यद्यपि सब पशुओ में गधी के दूध का कम्पोज़ीशन मनुष्य के दूध के कम्पोज़ीशन के निकटतम है, फिर भी भावी नस्ल का ध्यान रखते हुए उस पर विचार नहीं किया गया। अब रह गए बकरी, भैंस और गाय।

बकरी के पक्ष में सबसे बड़े तर्क ये थे कि वह सस्ती होती है—ख़रीदने में, खिलाने-पिलाने मे और आवश्यकता पड़े तो खाने में भी (यद्यपि इसकी सम्भावना नहीं थी क्योंकि विन्ध्या बाबू का परिवार शाकाहारी था) और फिर गांधीजी तो सदा ही बकरी का दूध पीते

थे। बकरी के विपक्ष में तर्क ये थे कि उसका दूध कम होता है, उसमें हीक (गन्ध) आती है और वह दही, मट्ठा तथा मक्खन के लिए विशेष उपयुक्त नहीं होता।

भैंस का दूध मात्रा में अधिक, गाढ़ा तथा शक्तिवर्द्धक होता है परन्तु सेवन से बुद्धि ठस हो जाती है, शरीर भले ही बन जाय। इसके अतिरिक्त भैंस ख़रीदने और खिलाने में महँगी पड़ती है। भैंस का स्वभाव ज़िद्दी होता है। जब तक पेट भरकर इच्छानुसार दाना-चारा न मिल जाय, वह दूध ही नहीं देती और यदि एक बार ठान ले कि दूध नहीं देना है तो आप थनों पर लटक भी जायँ—इस उपाय की सिफ़ारिश नहीं की जाती क्योंकि इसे प्रयोग में लानेवाले बहुधा धूल में लोटते दृष्टिगत हुए हैं—एक भी बूँद दूध नहीं प्राप्त कर सकते।

गाय पर विचार करते समय पूरा परिवार गद्‌गद् हो गया। यह वह पशु है जिसे पालने से आम के आम और गुठलियों के दाम मिल जाएँ। अपेक्षाकृत सस्ती, देखने में सुन्दर, दूध पियो तो शरीर स्वस्थ और बुद्धि तीक्ष्ण हो, प्रातःकाल उठकर दर्शन-पूजन करके पंच गव्य का सेवन करो तो जीते जी स्वर्ग प्राप्त हो—मरने पर तो गारण्टी है ही।

सब प्रकार से विचार करने पर यही निश्चय हुआ कि गाय ख़रीदी जाय किन्तु निश्चय होना एक बात है और कार्य होना बिलकुल दूसरी। विन्ध्या बाबू का नौकरी के युग का अनुभव था कि 'सर्वोच्च प्राथमिकता' की परची लगी हुई फ़ाइलों में भी सप्ताहों की देरी हो जाती थी और यहाँ तो समस्याओं की कमी नहीं थी।

पहली समस्या तो यह थी कि कौन से रंग की गाय ख़रीदी जाय। कहा तो यह जाता है कि काली गाय का दूध सर्वाधिक गुणकारी होता है, परन्तु काली गाय देखने में सुन्दर नहीं होती। सुन्दर तो सफेद गाय लगती है किन्तु उसे साफ रखने में कठिनाई होती है।

सफ़ेद रंग पर गन्दे दाग़ बड़ी जल्दी चमकते हैं। सफ़ाई के लिए रोज़ नहलाने लगो तो डर रहे कि कहीं सर्दी खाकर बीमार न पड़ जाय। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि सफ़ेद गाय के दूध में इतने विटामिन—या कम से कम इतने गुण—नहीं होते जितने रंगीन गाय के दूध में। अतः एक समझौता किया गया। लाल रंग की गाय—अर्थात् जिस रंग की गाय लाल कहलाती है—ली जाय।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकारी पशुपालन विभाग और सैनिक डेरी फार्म को पत्र लिखे गए, जानवरों की मंडियों की धूल छानी गई तथा कई मेलों के चक्कर भी लगे किन्तु गाय नहीं ली गई। किसी के रंग का शेड ठीक होता तो सींग टेढ़े होते, किसी के सींग और रंग ठीक होते तो पूँछ कटी मिलती। गाय आने में देर पर देर होती जा रही थी, उधर घर में बच्चों ने अपने-अपने लिए गिलास भी छाँट लिए थे कि कौन किस में दूध पिएगा। दूसरा कोई उस गिलास पर हाथ लगा देता तो फ़ौजदारी हो जाती।

विन्ध्या बाबू की पत्नी बाज़ार से दूध गर्म करने के लिए कड़ाही, हाँडी और दही-मट्ठा के लिए मटकी भी ले आई थीं। रसोई के एक कोने में लोहे का कड़ा लगा दिया गया था और बढ़ई को आर्डर दे दिया गया था कि बहुत जल्दी दही बिलोने के लिए मथनी बना दे। मक्खन रखने के लिए पत्थर का फरवा ले लिया गया था।

आखिर एक दिन विन्ध्या बाबू एक पशु घर ले आए। उनकी पत्नी ने, जिनकी आँखें कुछ कमज़ोर थीं, पूछा, "यह क्या है?"

"तुम्हें दिखाई नही देता?"

"कुत्ता-जैसा कुछ है।"

"पागल हुई हो! कुत्ता नहीं, बछिया है।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

बच्चों ने गुस्से के मारे अपने गिलासों को पटक-पटककर तोड़

दिया और यद्यपि उनकी दादी के मन में भी कुछ ऐसे ही विचार उठे थे—वे विन्ध्या बाबू के हाथ-पैरों से सम्बन्ध रखते थे—परन्तु उन्होंने अपने विचारों पर नियत्रण किया और दूध, दही, मट्ठा आदि के बर्तन गोदाम मे रखवा दिए।

जब बोलचाल आरम्भ हुई तो विन्ध्या बाबू ने समझाया, "तुम जानती नहीं, दूध के गुणो पर जानवर की खुराक और उसके स्वास्थ्य का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। गाय ले आते तो पता नही कैसा उसका स्वास्थ्य था और कैसी खूराक। इस बछिया को अपने सामने पालेगे तो इस बात का पूरा विश्वास रहेगा कि इसके दूध में विटामिन तथा अन्य शक्तिवर्धक तत्त्व पूर्ण मात्रा मे होंगे।

बछिया को कहाँ रखा जाय, इस प्रश्न पर सबने अपने-अपने सुझाव दिए। विन्ध्या बाबू के विचार से गऊ माता जैसे सीधे-सादे पशु को पहले तो बाँधने की ही आवश्यकता नही थी और यदि बाँधना ही था तो उसके लिए विशेष आयोजन नहीं करना था। आखिर शराफत भी तो कोई चीज़ है! जिस बछिया के लिए इतना किया जाएगा वह कहना भी नहीं मानेगी। सो उन्होंने लगभग बारह वर्गफीट स्थान के चारों कोनों पर बाँस की चार खपच्चियाँ गड़ाईं और लगभग बारह इंच की ऊँचाई पर चारों ओर सुतली बाँधकर जगह घेर दी। बछिया और उसके लिए घास और पानी घेरे के अन्दर रखकर बछिया से बोले, "देख, कहीं जाना मत।"

प्रतीत होता है बछिया उच्चकुल की नहीं थी क्योंकि वह तो सवेरे अपने घेरे से ग़ायब थी। बड़ी खोज हुई और वह उसी जगह मिली जहाँ न मिलनी चाहिए थी—काँजी हाउस। क्रोध से विन्ध्या बाबू तमतमा उठे। जो पैसे उन्होंने काँजी हाउस में दिए वे उन्होंने बछिया की सन्ध्या की खूराक से काट लिए और बछिया को केवल पानी पी
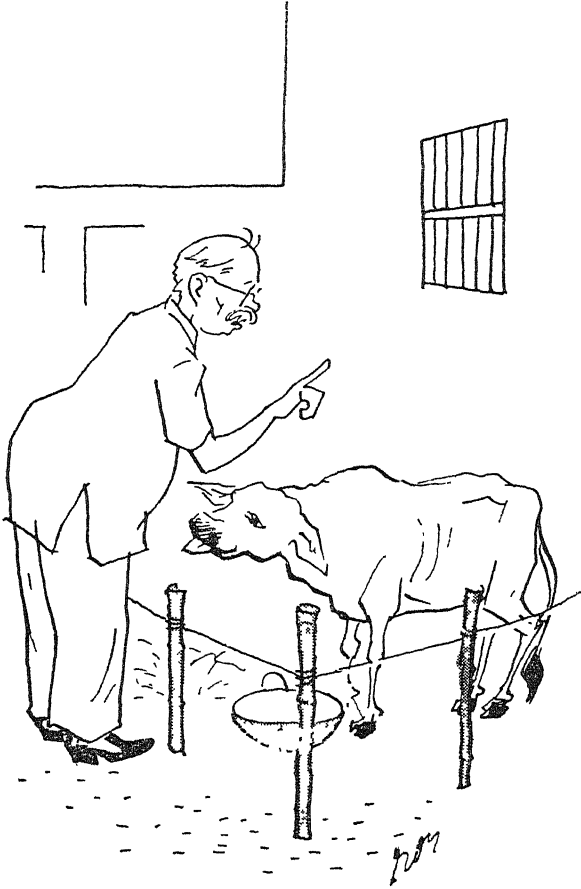
"देख, कही जाना मत !"

कर और अपने खूंटे की रस्सी चबाकर रात काटनी पड़ी। अगले दिन बछिया के लिए एक छोटा-सा कटघरा बना दिया गया और उसे—कटघरे को—फूस से छा दिया गया।

रहने का समुचित प्रबन्ध हो जाने के पश्चात् विन्ध्या बाबू को बछिया के भोजन की चिन्ता हुई। इसके लिए वह पशुपालन सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन आरम्भ करने ही वाले थे कि एक दिन उन्हें एक तार मिला—

"पिताजी सख्त बीमार हैं। फौरन आइये।

—सरला"

तार विन्ध्या बाबू की भतीजी का था। विन्ध्या बाबू का एक छोटा भाई था, गगन विहारी लाल। विन्ध्या बाबू का पैतृक मकान मेरठ में था। उनके पिता एक अदद मकान छोड़ गए थे। उनकी मृत्यु के समय विन्ध्या बाबू नौकरी पर लग चुके थे और गगनबिहारी पढ़ रहा था। माँ पहले ही मर चुकी थी। विन्ध्या बाबू ने किसी प्रकार गगनबिहारी को बी० ए० तक पढ़ाया और जब उसकी नौकरी लग गई तो उसका विवाह कर दिया। गगनबिहारी बड़े भाई और भाभी का भक्त था किन्तु जैसा कि ऐसे परिवारों मे साधारणतः होता है गगनबिहारी की बहू को यह अन्ध-भक्ति पसन्द नहीं आई। विन्ध्या बाबू और उनकी पत्नी का आभार यदि किसी पर था तो गगनबिहारी पर क्योंकि वही जानता था कि विन्ध्या बाबू ने किस प्रकार अपने बच्चों का मुँह पोंछकर और पत्नी के गहने बेचकर उसे पढ़ाया था और उसका विवाह किया था। गगनबिहारी की बहू जब आई थी उस समय वह स्वयं खाता-कमाता था। आरम्भ छोटी-छोटी बातों से हुआ। विन्ध्या बाबू को भी बुरा लगा किन्तु वह बिन्द्रा की माँ को समझाते—

"बिन्द्रा की माँ, बड़ी तुम हो। तुम्हें छोटों के मुँह नहीं लगना

चाहिए। अभी बच्ची है। धीरे-धीरे अपने आप समझ जायेगी।"

किन्तु बच्ची के बच्चा भी हो गया, तब भी उसमें अपने-आप समझने के कोई लक्षण प्रकट नही हुए। बात यहाँ तक बढ़ी कि दोनों भाइयो में अलग होने की नौबत आ गई, तभी भाग्य से विन्ध्या बाबू का तबादला लखनऊ हो गया। इस प्रकार दोनों अलग भी हो गए और जगहँसाई भी नहीं हुई।

ट्रांसफर के कुछ वर्ष बाद तक तो विन्ध्या बाबू पूजा-त्योहार पर अपने घर मेरठ जाते रहे, किन्तु एक तो रोज़-रोज़ आने-जाने का खर्च और फिर घर जाकर भी शान्ति के बदले अशान्ति ही मिलती थी, सो उन्होंने मकान का अपना हिस्सा किराए पर चढ़ा दिया और मेरठ जाना बन्द कर दिया।

गगनबिहारी के एक ही बच्चा था—सरला। सरला के जन्म के सात वर्ष बाद दूसरे बच्चे के प्रसव के समय गगनबिहारी की बहू का देहान्त हो गया था। बच्चा पेट में ही मर गया था उस समय भी विन्ध्या बाबू सरला को अपने साथ लाना चाहते थे किन्तु तब गगनबिहारी ने नही भेजा था। पत्नी के मरने के पश्चात् गगनबिहारी तो जैसे जीवन के दिन पूरे कर रहा। था घर कैसे चलता था इससे उसे कोई मतलब नहीं था। वह रातभर नशे में धुत्त बना पड़ा रहता था। किसी प्रकार नौ वर्ष गाड़ी चली। पहले भी दो-एक बार हलका-सा दिल का दौरा पड़ चुका था। डाक्टरों ने शराब छोड़ने को कहा किन्तु गगनबिहारी ने उत्तर दिया, "शराब और प्राण एक साथ ही छूटेंगे डाक्टर साहब।"

इस बार का दौरा गम्भीर था। गगनबिहारी के प्राण जैसे विन्ध्या बाबू की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके हाथ सरला को सौंपकर उसने सदा के लिए आँखें मूँद लीं। विन्ध्या बाबू सरला को अपने साथ लखनऊ ले आये।

बिन्द्रा की माँ सरला के आने से प्रसन्न नहीं हुई। वह बार-बार सरला की माँ का व्यवहार याद करके गुस्सा सरला पर उतारती। विन्ध्या बाबू कभी समझाते, कभी बिगड़ते।

"तुम क्यों हर समय इस बेचारी के पीछे पड़ी रहती हो ?"

"तो क्यों इसे लाकर मेरी छाती पर रख दिया ?"

"बिन्द्रा की माँ, वह बेचारी दुखिया है, इस बात को तो सोचा करो।"

"इसकी माँ जब मेरे सिर के ऊपर से रास्ता लगाती थी तब उसे भी सोचने को कहा था तुमने ?"

"अरे तो माँ का वदला बेटी से लोगी ?"

"है तो उसी माँ की बेटी ? साँप का बच्चा साँप....."

"अच्छा अब बहुत हुआ। यह मेरे भाई की निशानी है। ख़बरदार ! आज से इसे कुछ मत कहना।" विन्ध्या वाबू ने धमकी दी।

धीरे-धीरे यह तूफ़ान भी शान्त हो गया। सरला कॉलेज भी जाने लगी। तब विन्ध्या बाबू को अपनी बछिया की चिन्ता हुई। उसके लिए समुचित भोजन का प्रबध करना था। बछिया के लिए संतुलित भोजन के नुस्ख़े की खोज में वह दिन-रात मोटी-मोटी पुस्तकों में डूबे रहने लगे। बीच-बीच में कुछ लिखते भी जाते थे। एक दिन विन्ध्या बाबू आँगन में बैठे हुए नित्य की भाँति एक पुस्तक पढ़ने में मग्न थे। सहसा उन्हें अपनी पत्नी की चिल्लाहट सुनाई पड़ी,

"हट, हट ! अजी, तुम भी बैठे हो इन मरी किताबों में मुँह छिपाये। देखते नहीं बछिया ने सारी उर्द की दाल खा ली !"

"खाने क्यों नहीं देती उसे ? उर्द की दाल में प्रोटीन की मात्रा बहुत होती है।"

"अजी, आग लगे तुम्हारे प्रोटीन-पोटीन में। यहाँ नुक़सान हो गया।"

"बिन्द्रा की माँ, यही तो तुम ग़लती करती हो। हम तो मनुष्य हैं, जैसा सड़ागला अनाज सरकार और दूकानदार खिलाते है, खा लेते हैं लेकिन इस बछिया को तो उचित भोजन मिलना ही चाहिए। इसी के स्वास्थ्य पर हम सब का स्वास्थ्य निर्भर है। मै चाहता हूँ कि इसका दूध औषधि से भी बढ़कर गुणकारी हो। दूध गुणकारी होने के लिए बछिया को संतुलित भोजन मिलना चाहिए अर्थात् इसके भोजन में विटामिन्स, कार्बोहाइड्रेट यानी शकर वाले पदार्थ, प्रोटीन, खनिज तत्व और स्निग्ध पदार्थ उचित मात्रा में होने चाहिएँ और…"

"तुम तो सठिया गए हो। हमारे घर में भी बहुत-से जानवर पले हैं पर वहाँ कभी…"

"तुम्हारे घर में तो चूहों और खटमलों के अलावा और कोई जानवर मैंने देखा नहीं।"

"देखो जी, मेरे मैके के बारे में ऐसी बातें कीं तो अच्छा नहीं होगा, कहे देती हूँ, हाँ।"

"अच्छा-अच्छा, शान्त हो जाओ। अरे भई, मै तो यही चाहता हूँ कि बछिया को ऐसा भोजन मिले जिससे आगे चलकर उसका दूध अच्छा हो।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

कुछ दिन बाद बछिया को देखकर बिन्द्रा की माँ बोली, "अजी मैंने कहा, यह बछिया दिन पर दिन दुबली क्यों हो रही है ?"

"मुझे क्या पता ?" विन्ध्या बाबू ने उत्तर दिया।

"तुम्हें नहीं तो और किसे पता होगा ? तुम्हीं तो सबेरे से उसे लेकर चराने निकल जाते हो।"

"लेकिन वह तो कुछ खाती ही नहीं।"

"खाती ही नहीं ?"

"नहीं तो। बात यह है कि जंगल में जितने प्रकार के घास-पात हैं, सबके गुण-दोष तो मै जानता नहीं। जिन्हें मै नहीं पहचानता उन्हें मैं नहीं खाने देता और जिन्हें मै खिलाना चाहता हूँ उन्हें बछिया नही खाती। परसों की ही बात है, यह बड़े ज़ोर-शोर से अपना कान खुजा रही थी। मैंने सोचा खून की खराबी से खुजली हो रही है इसलिए इसे करेले की बेल तोड़कर दी पर इसने खाई ही नहीं।"

"तो करेले की बेल तुमने तोड़ी थी ? हे मेरे राम !" कहकर विन्ध्या बाबू की पत्नी ने दोनों हाथ अपने सिर पर मार लिये। फिर बोली, "मै अपने जीते-जी घर में यह गऊ-हत्या नहीं होने दूंगी। कल से गाय मुहल्ले के और जानवरों के साथ चरने जायेगी।"

"फिर इसका भोजन संतुलित कहाँ रहेगा ? कहीं विटामिन की कमी रह गई या प्रोटीन ही कम हो गए तो फिर दूध में गुण कहाँ से आयेंगे ?"

"तुम्हें जो इटामिन-बिटामिन खिलाने हों बाद में खिलाना, बछिया तुम्हारे साथ चरने नहीं जाएँगी।"

उस समय तो विन्ध्या बाबू चुप हो गए परन्तु अगले दिन से बाज़ार से आते ही सब्जियाँ ग़ायब हो जातीं, घी-तेल के डिब्बे खाली मिलते। घरवाले कभी हँसते, कभी झगड़ा करते। एक दिन विन्ध्या बाबू का पौत्र चुन्नू बछिया के सामने कुछ दूरी पर बिल्ली के बच्चे से खेल रहा था। बच्चा बार-बार बछिया की ओर दौड़ रहा था और बछिया कान खड़े किये सशंक दृष्टि से उसी ओर देख रही थी। विन्ध्या बाबू कई बार उस ओर गए किन्तु बछिया ने उनकी ओर नहीं देखा।

वह घबराये हुए अन्दर आकर बोले—

"बिन्द्रा की माँ ! अजी सुनती हो ?"

"क्या है ?"

"तुम रोज़ मेरी हँसी उड़ाती थीं, अब देख लो बछिया को विटा-मिन 'ए' की कमी हो गई है और शायद थोड़ी कमी विटामिन 'बी' की भी है। उसे तो अब दिखाई ही नहीं देता।"

अगले दिन से बछिया के लिए पके टमाटर और गाजर आने लगे। विन्ध्या बाबू तो उसे मछली का तेल पिलाने पर उतारू थे। वह तो, खैर, उनकी पत्नी के प्रतिवाद से रुक गया।

6

एक दिन सरला कॉलेज से लौट रही थी। सामने से एक युवक साइकिल पर आ रहा था। युवकोचित अभ्यास से उसने सरला पर एक दृष्टि फेंकी किन्तु इस बार उसकी दृष्टि वापस नहीं लौटी बल्कि सरला पर चिपक गई। वह चिल्लाया, "सरला !" और उसने इतने ज़ोर से ब्रेक लगाया कि साइकिल फिसल गई और गिर पड़ी। वह तो अच्छा हुआ कि साइकिल के साथ-साथ वह भी नहीं गिरा। युवक ने फिर कहा, "सरला !"

सरला भी युवक को देखकर ठिठक गई थी। उसने भी कहा, "महेश, तुम ?"

"तुम यहाँ कैसे, सरला ?" महेश ने पूछा।

जब एक युवक और युवती सड़क के बीचोंबीच में एक-दूसरे की बातो में इतने मग्न हो जायें कि उन्हें साइकिलों की घंटियाँ, इक्के-तांगेवालों की पुकार, मोटर-कारों के हार्न और ठेलेवालों की गालियाँ और भद्दे इशारे सुनाई और दिखाई देने बन्द हो जायें तो वह व्यक्ति, जिसकी ऊपरी मंज़िल खाली हो, भी समझ सकता है कि दोनों में

प्यार है।

सरला ने रिक्शा छोड़ दिया और दोनों पैदल चलने लगे। सरला ने बताया कि वह कैसे मेरठ से लखनऊ पहुँच गई थी।

"तुम्हें एकाएक देखकर मेरी तो जान ही निकल गई थी।" महेश ने कहा।

"मुझे देखकर तुम्हारी जान कब से निकलने लगी ? पहले तो देखकर ही जान आती थी।"

"मैंने सोचा कि तुम एक ही तरह लखनऊ आ सकती हो।"

"कैसे ?"

"पगली हो, इतना भी नहीं समझतीं।"

"धत् !" सरला ने कहा, "मेरा विवाह हो जाता और तुम्हें पता न चलता ?"

"यही तो सोच रहा था। अरे हाँ, यह पूछना तो मै भूल ही गया कि तुम कहाँ रहती हो।" महेश ने कहा। लेकिन अगले ही क्षण वह सिट्टी-पिट्टी भूल गया क्योंकि पीछे से एक कड़कती आवाज़ आई, "सरला !"

विन्ध्या बाबू को देखकर सरला को तो जैसे काठ मार गया और उसकी ज़ुबान बन्द हो गई किन्तु जब महेश ने देखा कि उस कड़कती आवाज़ के स्वामी विन्ध्या बाबू हैं तो उसकी जान में जान आई। वह उन्हें देख हाथ जोड़कर बोला, "विन्ध्या बाबू, नमस्कार। आप यहीं रहते है, सर ?"

"अरे महेश, तुम ? तुम यहाँ कैसे ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा। इस बीच महेश का दिमाग़ बड़ी तेज़ी से काम कर रहा था। लौंडा बहुत-से सिनेमा देखे हुए था। जिस परिस्थिति में वह था वैसे बहुत-से -दृश्य उसके मानस-पटल पर आए और चले गए। ऐसे समय मे उसके प्रिय

हीरो और हीरोइनों ने क्या किया था, क्या सवाद बोले थे और क्या गाना गाया था, वह भी उसे याद था। उसने जल्दी से कहा—

"सर, आप ही के पास आया था।"

"मेरे पास ? अच्छा, किसलिए ?"

"सर, जब से आप रिटायर हुए है ऑफिस का तो ढंग ही बिगड़ गया है। न कोई समय पर आता है, न काम करता है। सच पूछिये तो किसी को काम आता ही नही।" महेश ने कहा।

महेश ने विन्ध्या बाबू के मर्म का अत्यन्त ही कोमल भाग छू दिया था। विन्ध्या बाबू मन ही मन यह विश्वास करते थे कि उनके जाते ही ऑफ़िस की दशा बिगड़ जायेगी, कोई काम ठीक और समय पर नहीं होगा। वह सोचते थे कि ऑफ़िसवालों को अक्सर उनकी सहायता की आवश्यकता होगी; बल्कि वह प्रत्येक दिन ऑफ़िस से किसी न किसी व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा करते थे। किन्तु कोई भी नहीं आता था। कभी कोई पुराना साथी बाज़ार में मिला था तो विन्ध्या बाबू ने कुछ गोल शब्दों में इस बात का संकेत भी किया था कि ऑफ़िस के काम में किसी भी प्रकार की सहायता करने के लिए वह तैयार थे और यदि कभी कोई काम पड़े तो घर आने अथवा विन्ध्या बाबू को बुलवाने में संकोच न करें—किन्तु किसी ने भी उनके संकेत का लाभ नहीं उठाया था। किसी के आने की प्रतीक्षा करते-करते बेचारे विन्ध्या बाबू निराश हो गए थे। महेश ने आकर और विन्ध्या बाबू की प्रशंसा करके उनके अहम् को महत्त्व दिया। उन्होंने कहा, "चलो, अन्दर चलकर बैठें। सरला बेटी, ज़रा दो प्याली चाय तो बना दे।"

विन्ध्या बाबू उस समय उन दोनों से उनके साथ-साथ आने और

'सर, आप ही के पास आया था।''

सड़क पर खड़े होकर बात करने की कैफ़ियत पूछना भी भूल गए।

"और कहो, क्या हाल-चाल हैं ऑफ़िस के ?" विन्ध्या बाबू ने बैठते हुए कहा।

"ऑफ़िस का हाल ख़राब है, सर।" महेश ने खड़े-खड़े कहा। महेश विन्ध्या बाबू के ऑफ़िस में टेम्परेरी लोअर डिवीज़न क्लर्क था। नौकरी लगे केवल दो साल हुए थे।

"अरे बैठ जाओ, बैठ जाओ!" विन्ध्या बाबू ने कहा, "कन्हैया बाबू के क्या हाल हैं ?"

बाबू कन्हैयालाल ऑफ़िस में विन्ध्या बाबू के उत्तराधिकारी थे। प्रश्न पूछकर विन्ध्या बाबू ने महेश को मुश्किल में डाल दिया था। प्रशंसा करता तो विन्ध्या बाबू के नाराज़ होने का डर (शायद नाराज़ हो जायँ), बुराई करता था तो पहले तो यही पता नहीं कि विन्ध्या बाबू उसे क्या समझें, दूसरे कहीं कन्हैया बाबू से कह बैठे तो ऑफ़िस में रहना दूभर हो जाय। उसने राजनैतिक चाल चली।

"जी, कन्हैया बाबू आदमी अच्छे हैं और काम भी जानते है लेकिन सर, आप-जैसी बात कहाँ!"

"अरे नहीं, ऐसी क्या बात है, मैंने क्या किया।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

महेश समझ गया कि चाल अच्छी थी। उसने उत्साह से कहना आरम्भ किया, "जी आपके टाइम मे बात ही कुछ और थी। हर आदमी टाइम पर आता था और टाइम पर जाता था, काम करता था। काम नहीं आता था तो आप हमेशा सिखाने को तैयार रहते थे और भीड़े-वक़्त आपसे सहायता पाने की आशा सब करते थे। अब वह वातावरण नहीं रहा है।"

महेश के कहने के ढग और उद्देश्य पर किसी को आपत्ति हो

सकती है किन्तु तथ्यों पर नहीं। वास्तव में विन्ध्या बाबू अपने दफ़्तर तथा मुहल्ले में लोकप्रिय थे। वह ऐसे ऑफ़िस सुपरिंटेण्डेण्ट थे जैसे होने चाहिएँ और जैसे अब अप्राप्य होते जा रहे हैं। उनके समय ऑफ़िस एक संयुक्त परिवार था जिसके वह कर्ता थे। विन्ध्या बाबू अपने कार्य में वास्तव में दक्ष थे और दूसरों को काम सिखाते भी थे। किसी भी क्लर्क को कोई कठिनाई हो, विन्ध्या बाबू अपना काम छोड़कर उसका काम करने लगते थे और तब तक नहीं छोड़ते थे जब तक वह स्वयं न करने लगे और सबसे बड़ी बात यह थी कि वह अपने मातहतों का ध्यान रखते थे और अपना उत्तरदायित्व पूरी तरह समझते थे।

एक बार विन्ध्या बाबू के अफ़सर ने अपने ऑफ़िस के दो क्लर्कों को ऑफ़िस के समय हज़रत गंज में घूमते हुए देख लिया। उसने लौट कर विन्ध्या बाबू से जवाब तलब किया। विन्ध्या बाबू ने शान्त स्वर में उत्तर दिया, "सर, वे मुझसे पूछकर किसी काम से गए हैं।"

थोड़ी देर बाद अफ़सर ने अपने कमरे से ही सुना विन्ध्या बाबू उन दोनों युवक क्लर्कों के लत्ते उतार रहे थे, "तुम लोग आवारा हो, दफ़्तर के टाइम में मटरगश्ती करते हो, सरकार के साथ बेईमानी करते हो, पैसा लेते हो लेकिन काम नहीं करते—फिर कभी ऐसा किया तो सस्पेंड करा दूँगा.... !" दोनों क्लर्क भीगी बिल्ली बने सुनते रहे। फिर बोले, "अरे दादा, गलती हो गई।"

"जाओ, अपना काम करो।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

इस प्रकार कुछ तो विन्ध्या बाबू के समय में ऑफ़िस बड़े अच्छे ढंग से चल रहा था और महेश ने गलत नहीं कहा था और कुछ अपनी प्रशंसा—ग़लत या सही—सब को अच्छी लगती है। उन्होंने महेश से पूछा, "कहो, कैसे आये थे ?"

"एक स्टेटमेण्ट भेजना था, वह बन ही नहीं रहा है।"

"अच्छा तो लाओ काग़ज़ात, अभी बन जाता है।" विन्ध्या बाबू ने कहा और आस्तीन चढ़ाकर काम में लगने की तैयारी करने लगे।

"लेकिन आज तो मैं काग़ज़ात लाया नहीं। मैंने सोचा कि पता नहीं आपको फ़ुरसत हो या न हो।" महेश ने कहा।

विन्ध्या बाबू के उत्साह पर ठंडा पानी पड़ गया। वह कुछ हत्प्रभ-से होकर बोले, "कल ज़रूर ले आना। ये सब चीज़ें टाइम पर बन जानी चाहिएँ।"

महेश चाय पीकर और अगले दिन सरकारी काग़ज़ों सहित आने का वचन देकर चला गया।

जब महेश चला गया तो विन्ध्या बाबू को कुछ याद आया। उन्होंने सरला को बुलाकर पूछा, "तू महेश को कैसे जानती है?"

"मेरठ मे हमारे पड़ोस मे ही तो रहते थे।"

"हूँ। क्या करता है उसका बाप?"

"दूकान।"

"किस चीज़ की?"

"पसरट्टे की।"

"क्या नाम है उसका? वनवारीलाल तो नही?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

"जी, यही तो है।" सरला ने उत्तर दिया।

"ओ, उसे तो मै जानता हूँ। तब तो महेश अपने ही घर का लड़का है लेकिन मैंने उसे मेरठ में कभी नही देखा।"

"बचपन में वह अपने नाना के घर रहते थे। फिर आप भी तो बहुत दिन तक मेरठ नहीं गए थे।"

"तभी तो। लेकिन महेश दूकान पर क्यों नही बैठा?"

"मुझे क्या पता ?" सरला ने उत्तर दिया। विन्ध्या बाबू ने सरला की ओर देखा। फिर मन में सोचा—महेश अच्छा लड़का है।

7

पिछले सात दिन से लगभग हर रोज़, सवेरे और शाम दोनों बार भोजन करते समय विन्ध्या बाबू बड़बड़ाते थे। उस दिन भी वही कर रहे थे, "यह खाना है या गोबर ?"

"गोबर का स्वाद मुझे तो पता नहीं, तुम्हें पता होगा। तुम्हीं बता सकते हो।" बिन्द्रा की माँ ने कहा। खाना बहू पकाये या बेटी, खिलाते समय बिन्द्रा की माँ ही रसोई में बैठती थीं। उस दिन तो खाना पकाया भी उन्होंने ही था। यों तो कोई भी स्त्री अपने पकाये भोजन की बुराई दूसरे के मुँह से नही सुन सकती, फिर विन्ध्या बाबू की पत्नी तो अपनी कोई भी आलोचना—विशेषत: विन्ध्या बाबू से—नही सुन सकती थी। दोनों के विवाह को चालीस वर्ष से ऊपर जो हो चुके थे।

बिन्द्रा की माँ की बात सुनकर विन्ध्या बाबू के जी मे आया कि भोजन की थाली उसके सिर पर मार दे किन्तु ऐसी-ऐसी बातें तो उनके जी में सारे दिन आती रहती थी, सब पर अमल थोड़े ही किया जा सकता था ! अपनी इच्छा को दबाकर उन्होंने कहा, "खाने में कोई स्वाद ही नहीं, बिलकुल फीका-फीका-सा है। घर मे इतनी मिर्चे आती हैं, पता नही कहाँ चली जाती हैं। तुम्हारा हाथ बिगड गया है · · ·"

"तुम्हारा मुँह ही बिगड़ गया है।" विन्ध्या बाबू की पत्नी कहने वाली थीं कि उनके बिगड़े हुए तेवर देखकर विन्ध्या बाबू ने जल्दी से संधि प्रस्ताव रखा, "पहले तुम इतना बढ़िया भोजन पकाया करती थीं · · ·"

बिन्द्रा की माँ ने ज़हर का बुझा तीर तरकस में रख लिया और बोलीं, "आग लगी मिर्चे ही खराब आती हैं। एक मुट्ठी भर कर तो

पड़ती हैं फिर भी....."

बात यहीं पर समाप्त नहीं हुई। मिर्चे बदल-बदलकर लाई गई किन्तु भोजन का स्वाद एक बार जो बिगड़ा था तो फिर नहीं सुधरा। विन्ध्या बाबू ने अपने स्वभाव के अनुसार रोग की जड़ पर ही चोट की। बाज़ार में अच्छी मिर्चे नहीं मिलती तो वह अपने घर पर अच्छी मिर्चें उगाएँगे। जब मिर्चे उगाने का निश्चय हो गया तो विन्ध्या बाबू इसी काम में जी-जान से जुट गए। मिर्चों के बारे में जो कुछ भी मिला, उन्होंने पढ़ा।

"लाल मिर्च—कैप्सिकम एनम—जो अंग्रेजी में गिनी पेप्पर, पॉड पेप्पर आदि नामों से पुकारी जाती है, 'सोलेनेसी' परिवार के पौधे का फल है। कच्चे फल का रंग हरा और पक्के का पीला, लाल और कत्थई होता है। पौधे की ऊँचाई दो-ढाई फुट (कभी-कभी पौधे की ऊँचाई छः-सात फुट भी हो जाती है) और फल की लम्बाई छः इंच तक होती है। फल में बहुत-से छोटे-छोटे, चपटे, पीले रंग के बीज होते हैं। साधारणतः कैप्सिकम फ्रूटसेंस जाति का ही फल खाने के काम में लाया जाता है। यह पौधा विषुवत रेखा के आस-पास तथा समान जलवायु वाले भागों में उगाया जाता है। इसकी खेती विशेषतः भारत, मैक्सिको, स्पेन, पुर्तगाल और हंगरी में होती है। फल—कच्चा और पक्का दोनों—भोजन में स्वाद पैदा करने के लिए प्रयुक्त होता है और दवा बनाने के काम में आता है। इसका स्वाद तीखा और जलन पैदा करने वाला होता है जो एल्कलॉयड्स श्रेणी के रासायनिक द्रव्यों के कारण होता है। सारे भारत में इसकी खेती होती है किन्तु दक्षिण भारत में प्रचार अधिक है..."

मिर्च पर भली-भाँति खोज करने के पश्चात् विन्ध्या बाबू ने अपने बाग़ीचे—जिसे उन्होंने पड़ोसियों से तंग आकर अपने हाथों उजाड़ दिया

था—का पुनरुद्धार किया। देश के सबसे प्रसिद्ध बीज-विक्रेता के यहाँ से न केवल देश के विभिन्न राज्यों बल्कि विदेशों की भी सबसे तेज़ मिर्चों के बीज मँगाकर पौधा तैयार करने के लिए बो दिए।

इस काम से जब अवकाश मिला तब विन्ध्या बाबू ने एक दिन महसूस किया कि बछिया जवान हो गई है। बछिया के भावी वरों ने ज़ोर-शोर से कोर्टशिप आरम्भ कर दी थी। भावी दूल्हों को विन्ध्या बाबू बड़ी बारीकी से देखते और सभी में उन्हें कुछ न कुछ कमी लगती। किसी का डील-डौल अच्छा नहीं होता तो किसी का रंग। जिसमें ये बातें ठीक मिलतीं उसके सीग उनकी इच्छानुकूल दिशा में मुड़े न होते। एक-आध इसलिए अस्वीकृत हुए कि उन्होंने विन्ध्या बाबू—जो डंडा लिये खड़े रहते थे—की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखकर फुंकार भरी थी। अनिमंत्रित आगन्तुकों के अतिरिक्त विन्ध्या बाबू स्वयं भी बछिया के लिए दूल्हे की खोज में थे। अन्त में उन्हें सरकारी डेरी फ़ार्म का साँड पसन्द आया और एक दिन शुभ मुहूर्त में बछिया की उससे मित्रता करा दी गई। उस दिन से विन्ध्या बाबू बछिया का और भी ध्यान रखने लगे।

बिन्द्रा की माँ को पान खाने की आदत थी। इसके लिए घर पर एक बड़ा-सा पानदान था। एक दिन वह बोलीं, "अरे बिन्द्रा! इस चुन्नू को मना कर दे। यह मेरे पानदान से पान चुराकर खाता है। कई दिन से देख रही हूँ, पान ग़ायब हो जाते हैं। कल ही सौ पान मँगाए थे, आज दस भी नहीं बचे। मै इसे पीटूँगी।"

"दादी, मैने नहीं लिये पान।" चुन्नू ने सफ़ाई में जीभ निकाल कर दिखाई, "देखो, जीभ तो लाल नहीं है।"

"हाँ, माँ, इसने तो पान नहीं खाये।" बिन्द्रा ने कहा।

"तो पानदान खा गया पान?" बिन्द्रा की माँ ने झल्लाकर पूछा।

"दादाजी ने लिये है।"

"झूठ बोलता है। उनके तो दाँत ही नहीं है, पान लेकर वह क्या करेंगे ?"

"बछिया को खिलाते है।"

विन्ध्या बाबू ने सफाई दी, शरीर स्वस्थ रखने के लिए कैल्सियम अत्यन्त आवश्यक है। इसकी कमी से बच्चों की हड्डियाँ मुलायम पड़ जाती हैं, टांगे कमान-जैसी हो जाती है और घुटने टेढ़े। कंठमाला तथा दाँतों के रोग हो जाते हैं। गर्भवती के लिए तो कैल्सियम और भी आवश्यक है क्योंकि उसी से गर्भ के बच्चे को यह मिलता है। हड्डी मज़बूत करने के लिए फ़ासफोरस भी आवश्यक है और फासफ़ोरस को शरीर तत्व में मिलाने के लिए कैल्सियम के बिना काम नहीं चल सकता। अब बताओ, बछिया को कैल्सियम कैसे देता ? ऊपर से पुताई करने से तो काम चलता नही और न वह अकेला खाया जाता है। इसलिए मैंने पान में लगाकर खिला दिया। वह बेचारी तो मना कर रही थी, खा ही नहीं रही थी। मैंने बड़ी ख़ुशामद करके सब्जी के साथ खिला दिया और अब तो मै उसे विटामिन 'डी' की गोलियाँ खिलाने वाला हूँ क्योंकि कैल्सियम और फ़ासफ़ोरस ठीक से शरीर में मिलाने के लिए विटामिन 'डी' लेना आवश्यक है। इससे हड्डियाँ और दाँत मज़बूत होते हैं।"

इस व्याख्यान का परिवार के सदस्यों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ा। बिन्द्रा अपने लिए बादाम लाया था। कहीं विन्ध्या बाबू गाय को बादाम न खिला डालें, इस डर से वह लगभग डेढ़ पाव बादाम बिना भिगाए एक साथ खा गया। एक सप्ताह के बाद उसकी भूख बिलकुल बन्द हो गई। डाक्टरों ने कहा कि लिवर ख़राब हो गया है और कमलबाय (पीलिया) होने का डर है। काफ़ी दिन उसकी हालत

"बछिया बेचारी तो खा ही नहीं रही थी, मैंने बड़ी खुशामद करके सब्ज़ी के साथ खिला ही दिया...."

ख़राब रही। वह तो कहो बच गया नहीं तो · · ·

बिन्द्रा की माँ, जो आँखों की कमज़ोरी के कारण आँवले का मुरब्बा खाया करती थी, अलग चिन्ता मे पड़ गई। उन्होंने कुछ आँवले खाये और कुछ पीसकर सिर पर रख लिये। मीठे के लालच में इतनी चीटियाँ उनके सिर और मुँह पर चढ़ गई कि रातभर बेचारी अपना सिर और मुँह पीटती रही। चीनी जमने के कारण उनके बाल इस बुरी तरह जकड़ गए कि बहुत-से तो जड़ से काटने पड़े। उन्होंने वह महा-भारत मचाया कि विन्ध्या बाबू न केवल विटामिन और संतुलित भोजन भूल गए बल्कि गाय के पास खड़े होने में भी डरने लगे।

गाय का काम छूट गया और मिर्च की पौध भी क्यारियों में लग चुकी थी। फलस्वरूप विन्ध्या बाबू को एक बार फिर समय काटना पहाड़ लगने लगा।

8

समय काटने के लिए विन्ध्या बाबू ने धर्म की ओर ध्यान दिया और अपनी संध्या-पूजा का समय बढ़ा दिया किन्तु उनकी पत्नी की कैंची की तरह चलने वाली ज़ुबान, उनके लड़के बिन्द्रा की उनके तीन पोतों पर डाँट-फटकार और पोतों—चुन्नु, मुन्नु और गुड्डू—की चीख़-पुकार के कारण पूजा-पाठ मे विशेष ध्यान नहीं लगता था। विन्ध्या बाबू ने निश्चय किया कि पूजा-पाठ घर से बाहर ही करेंगे। यह जन्म तो जैसा बीता वैसा बीता, अगले जन्म के लिए भी तो कुछ करें।

शहर से बाहर नदी थी जहाँ शौचादि से निवृत होने, स्नान करने, कपड़े धोने, पूजा-पाठ करने तथा मुर्दे जलाने के लिए लोग जाते थे। विन्ध्या बाबू ने सोचा—नदी के किनारे ध्यान अच्छा लगेगा सो उन्होंने अगले दिन से प्रातःकाल नदी के किनारे जाना आरम्भ कर दिया। वहाँ जाते-आते टहलना भी हो जाता और वह वहीं स्नान करके

भगवान् का ध्यान करने बैठ जाते।

ऑफ़िस कार्य के अतिरिक्त जिस कार्य में विन्ध्या बाबू की रुचि थी और जिसे वह ऑफिस कार्य की ही भाँति दक्षता से करते थे वह था रामायण पाठ। लगभग पूरी रामायण उन्हें कण्ठस्थ थी और वह बड़े मधुर स्वर में दोहे-चौपाइयाँ गाया करते थे। नदी किनारे रामायण पाठ करते ही पहले ही दिन कई श्रोता इकट्ठे हो गए और भक्तिपूर्वक पाठ सुनने लगे।

वाहवाही का नशा बड़ा कड़ा नशा है और किसी भी आयु में चढ़ सकता है। विन्ध्या बाबू अगले दिन से और भी सवेरे नदी पर जाने लगे तथा देर तक पाठ करने लगे। रामायण के अतिरिक्त श्रीमद् भागवत की पोथी भी साथ ले जाने लगे। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ने लगी। विन्ध्या बाबू ने लक्ष्य किया कि श्रोताओं में से एक बुढ़िया, जो कपड़ों तथा शक्ल-सूरत से किसी भले घर की प्रतीत होती थी, सबसे पहले आती, सबसे आगे बैठती, बड़े ध्यान से पाठ सुनती और सबसे पीछे घर जाती। जिस दिन और जिस समय विन्ध्या बाबू ने यह बात चेतन मन से लक्ष्य की, उनकी दृष्टि उस बुढ़िया की दृष्टि से मिल गई। दृष्टि मिलते ही विन्ध्या बाबू के हृदय मे एक चमक के साथ झन्न से ऐसे आवाज़ हुई जैसे बिजली के तारों पर किसी ने ढेला मार दिया हो। क्षणभर के लिए वह चौपाई भूल गए, उनकी जीभ लड़खड़ाई और कंठ-स्वर काँपा। उन्होंने अपने आप को संयत करके पाठ ज़ारी रखा।

कथा समाप्त होने पर बुढ़िया रुकी रही। विन्ध्या बाबू जब अपनी पोथी, आसन आदि समेट रहे थे तो बुढ़िया ने कहा, "पंडितजी, आप बड़ी सुन्दर कथा बाँचते हैं।"

प्रशंसा सुनकर विन्ध्या बाबू इतने अस्त-व्यस्त हो गए कि अपनी पोथियों को अँगोछे में बाँधने के बदले अपनी धोती में बाँधने लगे।

उन्होंने कहा, "माई मैं पंडित नहीं हूँ, एक साधारण-सा आदमी हूँ।"

"नहीं पंडितजी," बुढ़िया ने कहा, "मैंने भी बड़ी-बड़ी तीर्थ-यात्रा की हैं लेकिन आप जैसा-पंडित नहीं देखा।"

"माई, मुझे बार-बार पंडित मत कहो। मैं तो जात का कायस्थ हूँ। मेरा नाम विन्ध्यबिहारी लाल है लेकिन सब लोग मुझे विन्ध्या बाबू कहते हैं। आप भी मुझे विन्ध्या बाबू कहा करें, माई।"

"मैं आपको एक शर्त पर विन्ध्या बाबू कह सकती हूँ।"

"क्या ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

"आप भी मुझे माई न कहकर गोदावरी कहा करें।" बुढ़िया ने कहा।

बुढ़िया का चमत्कार ! विन्ध्या बाबू का कायापलट ! उस दिन से विन्ध्या बाबू के मुखड़े पर किसी ने झाऊ के जंगल जैसी दाढ़ी नही देखी। रोज़ ठुड्डी घिसाई होती। जो मूँछें पहले चाय, दूध और पानी पीते समय छलनी का काम करती थी, अब कट-छँटकर क़ायदे में आ गई और नोकदार बन गई। एक बार तो उन्होंने ख़िज़ाब आदि प्रयोग करने की भी बात सोची किन्तु इस क्रिया पर बिन्द्रा की माँ की भयंकर प्रतिक्रिया की सम्भावना से यह विचार छोड़ दिया। कपड़े भी साफ़-सुथरे रहने लगे। चाल में, बुढ़ापे के बावजूद, गैंडे की चाल की-सी अकड़ आ गई। घरवालों ने समझा कि खुली हवा तथा रामायण पाठ के फलस्वरूप हनुमानजी की कृपा हुई।

महेश को स्टेटमेण्ट बनाने में विन्ध्या बाबू की सहायता की अधिकाधिक आवश्यकता पड़ने लगी किन्तु जिस समय वह आता विन्ध्या बाबू का नदी का समय होता और वह उसे अगले दिन बुलाते। महेश को इसमें कोई आपत्ति नहीं होती। बिन्द्रा की माँ ने एक-आध बार कहा भी, "महेश का इतना आना-जाना ठीक नहीं !" लेकिन उन दिनों विन्ध्या बाबू ससार से बेखबर हो गए थे।

9

एक दिन विन्ध्या बाबू बहुत जल्दी पाठ से लौट आए और आते ही अपने कमरे में गुम-सुम लेट रहे। बिन्द्रा ने पुकारा, उनके पोतों ने पुकारा, यहाँ तक कि उनकी पत्नी ने पुकारा लेकिन विन्ध्या बाबू के जबड़े जो जैसे जाम हो गए थे। घरवालों को चिन्ता हुई। उनकी चुप्पी के कारण के विषय में सब लोग अटकलें लगाने लगे। बिन्द्रा की माँ ने सुझाव दिया, "ये तो सठिया गए हैं। उमर देखकर काम नहीं करते। मैं तो कहते-कहते बूढ़ी हो गई, मुझे तो कभी एक चौपाई भी नहीं सुनाई लेकिन वहाँ नदी के किनारे बैठकर घंटों चिल्लाते हैं। गला बैठ गया होगा।"

विन्ध्या बाबू चुपचाप ठंडी आहें भरते रहे। उस दिन उन्होंने भोजन भी नहीं किया।

अगले दिन विन्ध्या बाबू फिर नदी के किनारे पहुँचे। स्नान-ध्यान किया और कथा के आसन पर जम गए किन्तु गोदावरी का कहीं पता नहीं था। उन्होंने मरे मन से पाठ आरम्भ किया किन्तु उनका मन पाठ में नहीं था, और आँखें तो रास्ते पर जमी ही थीं। सहसा विन्ध्या बाबू चौपाई को दोहे की लय में पढ़ने लगे। श्रोताओं को आश्चर्य हुआ। उसके बाद तो श्रोताओं का आश्चर्य बढ़ता गया क्योंकि कभी विन्ध्या बाबू चौपाई भूल जाते, कभी दोहे का ग़लत अर्थ बताने लगते। बात यह हुई कि गोदावरी आई तो सही किन्तु उसके साथ विन्ध्या बाबू की ही आयु का एक सजीला बूढ़ा था जिससे वह हँस-हँसकर बातें कर रही थी। विन्ध्या बाबू की छाती पर न केवल एक दर्जन साँप एक साथ लोट गए बल्कि डर्बी के घोड़े दौड़ गए, सड़क कूटने का इंजिन और रोड़ी तोड़ने की मशीन भी चल गई। फलस्वरूप उनका मूड बिगड़ गया। कथा चौपट हो गई और श्रोता उठकर चल दिए। गोदावरी के

साथ वाले बूढ़े ने मुँह बिचकाया और वे दोनों उठकर चले गए ।

विन्ध्या बाबू की अवस्था का कारण ताड़ने के लिए लोगों को क़यामत की नज़र रखने की आवश्यकता नहीं थी । उन्होंने भवें चढ़ाकर, आँखें मटकाकर खुसुर-पुसुर बातें करना आरम्भ कर दिया ।

"बुड्ढे को इस उमर में दिन लगे हैं ।"

"अरे, बुढ़िया की भी मति भ्रष्ट हो गई है ।"

"तभी तो कहते हैं कि घोर कलियुग आ गया है ।"

"रंगा सियार है । मुँह में राम, बग़ल में छुरी ।"

"छुरी नहीं, बग़ल में बुढ़िया ··· हा ··· हा ··· हा ···"

"किसी महात्माजी से कायाकल्प कराया है ।"

"अरे सिद्ध मकरध्वज बटी खाई होगी ···"

जितने मुँह, उतनी ही बातें ! लेकिन विन्ध्या बाबू और गोदावरी को इस पीठ पीछे पकती खिचड़ी का पता ही नहीं था । उनमें ग़लत-फ़हमी, मान, अभिमान, मान-मनौवल सब हुए । एक-दूसरे के घरों के पते लिखे गए, परिवारों के हाल-चाल पूछे गए और एक-दूसरे की परिस्थिति पर सहानुभूति प्रकट की गई । विन्ध्या बाबू ने कहा, "क्या बताऊँ गोदावरी, मेरा घरेलू जीवन कितना दुखी है । लड़का है, उसे अपने बीवी-बच्चों से फ़ुरसत नहीं; पत्नी है, वह अपने बेटे-पोतों में मगन है । मै जो कहता हूँ उसका उल्टा करती है । मैं रामायण पढ़ने बैठता हूँ तो वह चक्की चलाने बैठ जाती है । सीधी बात कहता हूँ तो उल्टे अर्थ लगाती है । मेरा तो जीना दूभर हो गया है ।"

गोदावरी ने उचित शब्दों में सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "मैं तो समझती थी कि मैं ही दुखी हूँ । मेरा बुड्ढा तो हर समय कुड़-कुड़ करता रहता है । सुनते-सुनते कान पक गए हैं । खैर, इससे एक लाभ तो हुआ । इस कुड़कुड़ाहट से बचने के लिए ही तो मैंने सवेरे घर

से निकलना आरम्भ किया था। तभी तुम्हारे दर्शन हुए।"

विन्ध्या बाबू अपने सपने के संसार में सुनहरे पंख लगाए उड़ रहे थे—क्षितिज में उमड़ते हुए तूफान से बेखबर।

हवा का पहला झोंका आया महेश के रूप में। सरला ने महेश से कहा, "देखो महेश, तुम आते हो तो मुझे अच्छा लगता है लेकिन ज़्यादा आने-जाने से ताऊजी को सन्देह हो गया तो मुश्किल हो जाएगी—मिलना-जुलना एकदम बन्द हो जाएगा।"

"अरे तुम्हारे ताऊजी को आजकल दीन दुनिया का होश कहाँ! वह तो अपने आप प्रेम के मारे हुए हैं।"

"क्या बात करते हो?" सरला ने नाराज़ी से कहा।

"अरे वात नहीं करता, सत्य वचन बोलता हूँ।"

"ये सिनेमा के डायलॉग कहीं और बोलना। तुम्हें ऐसी बातें करते हुए शर्म आनी चाहिए। ताऊजी तुम्हारे बाबूजी से भी बड़े हैं।"

"शर्म मुझे आनी चाहिए या तुम्हारे ताऊजी को···"

महेश का वाक्य पूरा होने से पहले ही सरला अन्दर चली गई और उसके बाद महेश से नहीं मिली।

तूफ़ान फटा बिन्द्रा के रूप में। एक दिन बिन्द्रा ऑफ़िस से आते ही विन्ध्या बाबू पर बरस पड़ा, "बाबूजी, आपने मुझे कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं छोड़ा है। मेरे ऑफ़िस के सब लोग मेरा मज़ाक उड़ाते हैं।"

"ऐसा काम मत किया कर जिससे मज़ाक उड़े।"

"काम मैं कर रहा हूँ या तुम कर रहे हो। मेरा तो ऐसा मन करता है कि यह शहर छोड़कर भाग जाऊँ। जिसे देखो उसके मुँह पर तुम्हारी और उस बुढ़िया की चर्चा है। तुम्हें बुढ़ापे में यह सब तमाशा करते हुए शर्म नहीं आती?"

बिन्द्रा की माँ भी गरजीं, "चुल्लूभर पानी में डूब मरो ! बाल सफ़ेद हो गए तब मस्ती सूझी है। मैं भी तो कहूँ यह ठस्से किस लिए हो रहे हैं। और उस राँड का तो मैं मुँह ही झुलस दूँगी।"

इस पिंसर मूवमेंट (दुतर्फ़ा हमला) से एक बार तो विन्ध्या बाबू के पैर लड़खड़ा गए किन्तु फिर उन्होंने भी चिल्लाकर धावा बोल दिया, "बकवास बन्द करो ! मेरे घर में रहकर और मेरा खाकर मेरे सामने मुँह खोलते हो ! "सबको कान पकड़कर बाहर कर दूँगा।"

"मैं भी तो कमाता हूँ।" बिन्द्रा ने कहा।

"कमाता होगा अपने बीवी-बच्चों के लिए। दो दिन अलग रहना पड़े तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाय।"

"यही बात है तो मैं कल ही चला जाऊँगा।"

"कल क्यों आज ही चला जा और अपनी माँ को भी लेता जा। मुझे किसी की ज़रूरत नहीं है।"

दुश्मन बड़ी बहादुरी से पीछे हटा और चाल बदल दी। अगले सबेरे से बिन्द्रा की माँ और बिन्द्रा भी कथा सुनने जाने लगे।

सरला ने महेश से सन्धि कर ली।

गोदावरी के साथ भी दो बॉडीगार्ड—एक बूढ़ा, एक जवान—आने लगे। कुछ दिन यही क्रम चला, फिर गोदावरी का आना बिलकुल ही बन्द हो गया। बिन्द्रा की माँ और बिन्द्रा की ड्यूटी भी समाप्त हुई।

10

रामायण से सीता को निकाल दीजिए तो फिर केवल बानर, भालू और राक्षस बचेंगे। राम और लक्ष्मण के सारे कार्य-कलाप सीता को वरण करने, खोने, फिर प्राप्त करने और अन्त में निर्वासन की स्थितियों को बनाने बिगाड़ने में ही केन्द्रित हैं। जो स्थान रामायण में सीता का

है, वही स्थान विन्ध्या बाबू के जीवन में गोदावरी का हो गया था। गोदावरी के चले जाने से विन्ध्या बाबू का रामायण पाठ अंडर-एक्सपोज़्ड फिल्म की भांति फीका पड़ गया था। श्रोता कन्नी काट गए तो कथावाचक ने भी घर को चहारदीवारी सँभाल ली। उनमें प्रेमियों के सभी शास्त्र-सम्मत गुण-दोष आ गए—ठंडी आहें भरना, भूख न लगना, खोए-खोए रहना, चाँदनी मे झुलसने पर भी चाँद की ओर घंटों ताकना, चिट्ठियाँ लिख-लिखकर फाड़ना आदि। वह तो खैर हुई कि पैंतीस वर्ष तक सरकारी दफ़्तर मे क़लम घिसकर कल्पना को कुण्ठित कर चुके थे, नहीं तो कोई आश्चर्य नहीं था कि पनघट, पनिहारी, कोयल, आम्रकुंज, भ्रमर, पुष्प, चाँद-चाँदनी, नदी-पोखर आदि के सतमेल से कोई कविता अथवा महाकाव्य लिखकर कवि सम्मेलनों में जाने लगते। ऊपर से बिन्द्रा की माँ की चीख-पुकार, ताने-उलाहने और डाँट-फटकार जले पर न केवल नमक बल्कि लाल मिर्च युक्त गर्म मसाले का काम कर रही थी।

घर में पड़े रहकर तो कुछ होता नहीं है। भगवान् भी उसी की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं। यह सोचकर विन्ध्या बाबू ने गोदावरी के घर की गली के चक्कर लगाने आरम्भ कर दिए। एक बार तो उनका प्रातःकालीन नदी स्नान भी छूट गया था। विन्ध्या बाबू ने न केवल उसकी पुनरावृत्ति की बल्कि पूजा-पाठ भी आरम्भ कर दिया। इस बहाने वह गोदावरी के घर की ओर से आने जाने लगे यद्यपि उधर से जाने में उन्हें दो मील अधिक चलना पड़ता था। परन्तु जंगलों और मरुभूमि की खाक छानने वाले मजनूँ और पहाड़ काटकर नहर बना देने वाले फ़रहाद के अनुयायी को इस छोटे से कष्ट की क्या चिन्ता! आखिर एक दिन विन्ध्या बाबू की तपस्या फली। उनके सामने सामने गोदावरी घर से निकलकर एक ओर को

चली। हाथ पर पत्र, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि से सजा थाल था। विन्ध्या बाबू लपककर गोदावरी के बराबर पहुँच गए। एक बार तो उन्हें देखकर गोदावरी सकपका गई, फिर संयत होकर बोली, "आज तो बहुत दिन बाद मिले, पंडितजी।"

"फिर मुझे पंडितजी कहा!" विन्ध्या बाबू तुनककर बोले।

"क्षमा करो, विन्ध्या बाबू, भूल गई थी। अब तो तुम नदी पर पाठ करने भी नहीं जाते। मैं एक दिन गई थी, तुम मिले नहीं। तबीयत तो ठीक रही?"

"तबीयत ठीक कैसे रह सकती है," विन्ध्या बाबू ने एक ठंडी साँस लेकर सन् इकतीस से पहले के फिल्मी हीरो की भाँति मुँह बनाकर (उन्हें पता नहीं था कि अधिकांश हिन्दी फिल्मों के हीरो अब भी वैसे ही बोलते हैं) कहा, "और अब रामायण पाठ भी किसके लिए करूँ? दुनिया बड़ी जालिम है, गोदावरी। उमसे किसी का सुख नहीं देखा जाता..."

दोनों मन्दिर पहुँच गए। गोदावरी ने जल्दी-जल्दी पूजा की। पूजा के बाद उसने क्या वरदान माँगा यह हम नहीं जानते। लौटते समय जब बिछुड़ने की बेला आई तो विन्ध्या बाबू ने पूछा, "अब कब मिलोगी, गोदावरी?"

"क्या बताऊँ?"

"कल इतवार है, तीसरे पहर मिलो। आजकल एक बड़ी अच्छी धार्मिक पिक्चर चल रही है, वहीं चलेंगे।"

"नहीं, नहीं!" गोदावरी ने कहा, "लोग क्या कहेंगे? और फिर घर से किस बहाने आऊँ?"

"तुम बुढ़िया होकर भी बिलकुल भोली हो। देखती नहीं आजकल स्कूल-कॉलेज के लड़के-लड़कियाँ तक कभी क्लास के बहाने, कभी

"तुम बुढिया होकर भी बिलकुल भोली हो...."

कॉलेज में जलसे के बहाने रोज़ सिनेमा जाते रहते हैं। तुम भी कोई बहाना बना देना। कह देना किसी पूजा, कथा या व्याख्यान में जा रही हो। यह एक तरह से झूठ भी नहीं होगा क्योंकि पिक्चर धार्मिक है। एक दर्जन भजन और धर्म पर लेक्चर तो होंगे ही।"

गोदावरी द्वारा बहुत कुछ अधमने तर्क-वितर्क करने पर भी विन्ध्या बाबू ने उसे इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि वह अगले दिन अढ़ाई बजे गली के नुक्कड़ पर मिलेगी।

अगले दिन बारह बजे से ही विन्ध्या बाबू तैयारी में जुट गए। दाढ़ी बनाई, मूँछें नोकीली कीं, दाँत साबुन से धोकर फ़िट किए, लोहा किये हुए कपड़े पहने, बचे-खुचे बाल पोमेड से चिपकाए और चले। बिन्द्रा की माँ और बिन्द्रा के पूछने पर कहा कि तबीयत कुछ दिन से खराब थी इसलिए डाक्टर के पास जा रहे हैं। बिन्द्रा को विश्वास नहीं हुआ कि डाक्टर के यहाँ जाने के लिए कोई अढ़ाई घंटे तैयारी करेगा। विन्ध्या बाबू के जाते ही बिन्द्रा भी कुछ दूर रहकर उनका पीछा करने लगा।

इन दोनों के जाते ही सरला ने भी एक कापी सँभाली और चलने लगी। बिन्द्रा की माँ ने पूछा, "तू कहाँ चली ?"

"कॉलेज में स्पेशल क्लास है।"

"अरे, आग लगे ऐसी क्लासों में ! पढ़ाई न लिखाई ! टेम-बेटेम का भी कोई ध्यान नहीं। इस बखत कौन-सी पढ़ाई होगी ?"

"यह क्लास इसी समय लगती है, ताई।" सरला ने कहा।

ताई बेचारी तो कॉलेज मे पढ़ी नहीं थी, क्या बोलती ?

कुछ देर चलने के बाद विन्ध्या बाबू एक स्थान पर खड़े हो गए। बिन्द्रा भी कुछ दूर पर छिप गया। कुछ देर बाद जब बिन्द्रा ने गोदावरी को जल्दी-जल्दी आकर विन्ध्या बाबू से मिलते और फिर दोनों को एक

श्रोर जाते देखा तो आश्चर्य के मारे उसका जबड़ा लटक गया लेकिन क्रोध के कारण फिर जकड़ गया। वह कुछ कहने के लिए आगे बढ़ा ही था कि उसने देखा कि एक और युवक उस ही की तरह विन्ध्या बाबू तथा गोदावरी का पीछा कर रहा था। जिज्ञासा ने क्रोध पर विजय पायी; बिन्द्रा स्वयं छिपा रहकर विन्ध्या बाबू, गोदावरी तथा उस युवक का पीछा करने लगा।

विन्ध्या बाबू गोदावरी को लेकर जब सिनेमा पहुँचे तो देखा कि वहाँ 'एक टिकट में दो मज़े—लैला-मजनूँ और शीरी-फ़रहाद एक टिकट में देखिए' लगा था। धार्मिक चित्र बदल चुका था। गोदावरी तो लौटना चाहती थी लेकिन विन्ध्या बाबू इतनी कठिनाई से हाथ आई निधि को खोना नहीं चाहते थे। गोदावरी को मानना पड़ा। बिन्द्रा और वह युवक भी टिकट लेकर हॉल में बैठ गए।

गोदावरी की आपत्ति व्यर्थ थी। खेल लैला-मजनूँ तथा शीरी-फ़रहाद न होकर कोई और ही होता तब भी देखा तो जाना नहीं था। वे दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े बातें करते रहे। बहुत बार लोगों ने 'शी · · · शी · · · हुश ···हुश' किया, चुप रहने को कहा, गालियाँ भी दीं लेकिन उन दोनों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इण्टरवल में विन्ध्या बाबू गंडेरी गुलाब-केवड़े वाली, लखनऊ की रेवड़ी कड़ाकेदार, बालू रेत की भुनी मूँगफली, लेमन सोडा, बरियों (बर्फ़) की बोतलें आदि लाए यद्यपि लेमन के अतिरिक्त कोई भी चीज़ उनके मतलब की नहीं थी क्योंकि दोनों के दाँत बनावटी थे, फिर भी प्रेम प्रदर्शन का कुछ फ़िज़ूलख़र्ची का माध्यम तो चाहिए ही।

खेल समाप्त होने पर विन्ध्या बाबू और गोदावरी बाहर आए और बाहर आते ही विन्ध्या बाबू की दृष्टि सरला और महेश पर पड़ी। दोनों जोड़ों की भई गति साँप छूछूँदर केरी। इससे पहले कि विन्ध्या बाबू

मुँह खोल सकें, दोनों भीड़ में ग़ायब हो गए। विन्ध्या बाबू आराम की साँस ले भी न पाए थे कि सामने बिन्द्रा दिखाई पड़ा। उसके पास ही वह युवक खड़ा था जो इन दोनों का पीछा कर रहा था। गोदावरी सोचने लगी कि सीताजी ने बड़े तप किए थे जो उनके चाहते ही पृथ्वी फट गई थी। विन्ध्या बाबू किसी प्रकार अन्तर्ध्यान हो सकने की प्रार्थना करने लगे।

गोदावरी के बेटे ने कहा, "तो यह है तुम्हारी सत्यनारायण की कथा!"

गोदावरी को कुछ न सूझा तो उसने स्त्रियोचित सरलता से कहा, "यह पंडित मुझे कथा के बहाने ही तो बहका लाया था।"

विन्ध्या बाबू को इतना आश्चर्य हुआ कि उनसे प्रयत्न करने पर भी मुँह नहीं खुला। उनके बदले बिन्द्रा ने कहा, "आप कोई दूध पीती बच्ची तो हैं नहीं जो कोई आपको बहका लाता।"

"तुम कौन हो जी?" गोदावरी के बेटे ने बिन्द्रा से पूछा।

"तुमसे मतलब?" बिन्द्रा ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया।

"मतलब अभी बताता हूँ।" कहकर गोदावरी के बेटे ने आस्तीन चढ़ाई और बिन्द्रा पर झपटा। दोनों एक-दूसरे को मतलब समझाने लगे और उधर विन्ध्या बाबू तथा गोदावरी जीवनभर के घरेलू वाक्-चातुर्य का एक-दूसरे पर प्रयोग करने लगे। गोदावरी ने विन्ध्या बाबू को बगुला भगत, रंगा सियारा, मुँह में राम बग़ल में छुरी रखने वाला, बूढ़ियों को बहकाने वाला, सींग कटाकर बछड़ों मे मिलने वाला, पापी, दुश्चरित्र आदि कहा और विन्ध्या बाबू ने गोदावरी को मनचली बुढ़िया, तोते की तरह आँख बदलने वाली, सत्तर चूहे खाकर हज़ को जाने वाली बिल्ली, क़िस्सा तोता-मैना की मैना की उपाधि दी।

लोगों ने बीच-बचाव करके झगड़े का कारण जानना चाहा किन्तु

झगड़े की जड़ तो ऐसी अनहोनी बात थी कि उसके कहने से कोई लाभ नहीं था। कौन विश्वास करता ?

रास्ते में बिन्द्रा ने धमकी दी कि वह अगले ही दिन शहर से अपने ट्रान्सफ़र के लिए ऑफ़िस में प्रार्थना-पत्र दे देगा और घर भी छोड़ देगा। विन्ध्या बाबू ने बड़ी अनुनय-विनय की, फिर कभी गोदावरी का मुँह न देखने की क़सम खाई, तब दोनों में पुरुषोचित समझौता हुआ कि बिन्द्रा यह बात अपनी माँ से नही कहेगा। सरला की ओर से भेद खुलने की कोई आशंका नही थी।

प्रेम के रोग से मुक्ति पाकर विन्ध्या बाबू ने फिर घरबार की ओर ध्यान लगाया और मन बहलाने तथा स्वास्थ्य बढ़ाने के लिए सबेरे-सबेरे पार्क में जाने लगे, जहाँ उनके समवयस्क कई बूढ़े जुटा करते थे और जिन्हें विन्ध्या बाबू प्रायः भूल चले थे।

11

"आइए, आइए विन्ध्या बाबू, आप तो ईद के चाँद हो गए।" विन्ध्या बाबू के पुराने साथियों ने एक स्वर से उनका स्वागत किया। "हम लोगों को तो बिलकुल भूल गए, कहाँ रहे इतने दिन ?" वर्माजी ने कहा यद्यपि वह सब जानते थे कि विन्ध्या बाबू कहाँ रहे थे। विन्ध्या बाबू की प्रेमवार्ता पूरे शहर की चर्चा का विषय बन चुकी थी, मुहल्ला तो छोटी-सी चीज़ है लेकिन किसी ने उस अप्रिय प्रसंग को विशेष रूप से नहीं उठाया।

"कहिए, किस विषय पर बहस हो रही थी ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

"वर्माजी की पोती के विवाह की बात चल रही है लेकिन सारा झगड़ा है दहेज़ का। लड़केवाले दस हज़ार नगदी के अलावा और बहुत-से ख़र्च माँगते हैं।" शर्माजी ने बताया।

"लड़का क्या करता है ?"

"बी० ए० में पढ़ रहा है और लन्दन जाना चाहता है। लन्दन की पढ़ाई का ख़र्च भी माँगा जा रहा है।"

"लेकिन दहेज लेना-देना तो क़ानूनन जुर्म है।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

"किसके लिए? क़ानून पकड़े बैठे रहो और लड़की को घर बिठाए रखो ! अरे जो लोग दहेज के विरुद्ध लेक्चर देते नहीं थकते वे ही अपने लड़कों की शादियों में समधि को सन्यासी बनाकर छोड़ते हैं। नगदी नहीं तो कार, गहना, कपड़ा, रेडियो और जाने क्या-क्या चाहिए। पूरी लिस्ट चलती है आजकल, जी हाँ।"

"नौजवान ही इस दिशा में कुछ करें तभी काम चल सकता है।"

"अजी, आजकल के बनस्पति नौजवानों में इतना दम कहाँ ? अपने पैरों पर खड़े होने की हिम्मत हो तो दम आए। पढ़ेंगे माँ-बाप के ख़र्च पर, फ़ेल होंगे तो बाप को दौड़ाएँगे मास्टर के पास, पास होंगे तो बाप दौड़ेगा नौकरी की पैरवी के लिए, दफ़्तर से निकाले जाने की नौबत आएगी तो बाप जाएगा अफ़सर के पैरों पर टोपी रखने के लिए, काम करने की इच्छा नहीं होगी तो माँ-बाप को झूठ-मूठ बीमार बनाया जाएगा, लम्बी छुट्टी की आवश्यकता हुई तो उन्हें मार भी दिया जाएगा। ऐसे युवकों से यह आशा करना कि वे अपने माँ-बाप के विरुद्ध आवाज़ उठाएँगे, बेकार है।"

"लेकिन भाई, यह भी तो सोचो कि लड़के वाला लड़की वाला भी तो होता है। लेगा नहीं तो देगा कहाँ से ?" किसी ने कहा।

"एक ही उपाय है, शादी की बातचीत लड़के-लड़की की इच्छा पर छोड़ दी जाय, माँ-बाप इस झंझट में न पड़ें तो अच्छा रहे।"

"जो लड़कियाँ पर्दे में रखी जाती हों, अनपढ़ हों, बदसूरत हों,

कभी किसी आदमी के सामने नहीं गई हों, कौन उनसे प्रेम विवाह करने आएगा ? इस बात का अवसर ही कहाँ आएगा ?"

"लड़कियों की आर्थिक स्वतंत्रता ही इसका इलाज है । जब तक वे माँ-बाप, भाई-भाभी या पति पर बोझ बनी रहेंगी, यही समस्या रहेगी ।"

"लड़कियों को पढ़ाया जाना ज़रूरी है ।"

"पढ़ाकर भी क्या होगा ? जब पढ़े-लिखे लड़के भी मारे-मारे फिर रहे हैं तो लड़कियाँ ही पढ़-लिखकर कौन-सी आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाएँगी ?"

घटों की बहस के बाद भी वे लोग सदियों की इस समस्या को न सुलझा सके । वर्माजी की पोती के हाथ पीले होने का कोई डौल नहीं बना । विन्ध्या बाबू को भी सहसा सरला के विवाह की चिन्ता हो आई । सिनेमा के सामने महेश और सरला को साथ देखना तथा उनकी पत्नी द्वारा महेश के उनके घर आने पर आपत्ति उठाया जाना आदि उन्हें याद आया । सरला उस दिन के बाद से उनके सामने बहुत ही कम आती थी । विन्ध्या बाबू को तभी आभास हुआ कि महेश उनके पास नहीं, सरला के पास आया करता था—वह तो एक निमित्त मात्र थे ।

घर आकर विन्ध्या बाबू ने बिन्द्रा से कहा, "सरला के लिए कोई अच्छा-सा लड़का देखकर बताना ।"

"लड़का तो है और आपने भी उसे देखा है ।" बिन्द्रा ने कहा ।

"कौन ?"

"महेश कैसा है ?"

"महेश ? नहीं ।" विन्ध्या बाबू ने कहा ।

"क्या हर्ज़ है ? मेरी समझ से तो लड़का योग्य है, खाता-कमाता

है, देखने मे अच्छा है, घरबार ठीक है और दोनों में प्रेम भी है

"विन्ध्या बाबू एक वित्ता ऊपर उछल पड़े और मुँह बिगाड़कर चिल्लाए, "दोनों मे प्रेम है ! हमारा विवाह हुए चालीस वर्ष से ऊपर हो गए, हमने आज तक प्रेम नहीं किया और यह छोकरा और छोकरी ....अभी दूध के दाँत नहीं और प्रेम भी हो गया....यह विवाह नहीं हो सकता !"

बिन्द्रा अर्थभरी दृष्टि से चुपचाप विन्ध्या बाबू की ओर देखता रहा। विन्ध्या बाबू समझ गए, झेंपते हुए बोले, "कोई और लड़का नज़र में आए तो बताना। शादी-ब्याह कोई खेल नहीं है।"

लड़के वाले आए। लड़की देखी, घर-बार देखा। लड़की का सबसे बड़ा दोष यह था कि उसके माँ-बाप नहीं थे। वह अभागी थी किन्तु यदि वह अपने साथ काफ़ी दहेज ला सके तो सुभागी बन सकती थी। यदि लड़की अपने होने वाले वर को अमेरिका (इंग्लैंड अब आउट ऑफ़ फ़ैशन है) भिजवा सके तो भी सुलक्षणी कही जा सकती थी। विन्ध्या बाबू लड़के वालों की माँगों से परेशान हो गए।

बिन्द्रा ने एक दिन फिर पूछा, "आख़िर महेश में क्या ख़राबी है ?"

"वे दोनों प्रेम जो करते हैं।"

"प्रेम करना बुरा है ?"

"अरे बेवकूफ़, व्याह से पहले और पीछे वाले प्रेम में अन्तर है।"

"और कोई ख़राबी ?"

"और तो कोई ख़राबी नहीं दिखाई देती।"

"तो फिर वहाँ बात क्यों नहीं चलाते ?"

"तू ही क्यों नहीं कुछ करता ? तू बड़ा भाई है। तेरी भी तो कुछ ज़िम्मेदारी है।" विन्ध्या बाबू ने कुछ चिढ़कर कहा।

"सच पूछिए बाबूजी, तो मैने महेश से उसके पिताजी को इस विषय में पत्र लिखवा दिया है।"

"तुम लोगों का दिमाग़ ख़राब हो गया है, क्या? लड़का अपने बाप को चिट्ठी लिखेगा तब ब्याह होगा? मेरे जीते-जी इस घर में यह उल्टी गंगा नहीं बहेगी।"

"सुन तो लीजिए, बाबूजी। महेश ने तो अपने पिता को यही लिखा है कि सरला के घरवाले उनसे इस विषय मे बातचीत करना चाहते हैं। महेश के पिता सरला को तो जानते ही हैं और हम लोगों को भी जानते हैं। पत्र से उनके विचार पता चल जाएँगे। उनका पत्र आ जाय, फिर सोचेंगे कि क्या करना चाहिए।" बिन्द्रा ने कहा।

12

एक दिन विन्ध्या बाबू बड़े खुश-खुश आए और बिन्द्रा की माँ के हाथ पर एक मुट्ठी हरी मिर्च रखकर बोले, "यह लो अपने बग़ीचे की मिर्च। आज आयेगा खाने में मज़ा, लेकिन ज़रा देख-समझकर डालना। नेत्तरहाट (बिहार) की लौगिया मिर्च है, नचाकर रख देगी।"

विन्ध्या बाबू का कहना सच निकला। एक कौर खाते ही उनके पोते बिलबिला गए। किसी के मुँह मे घी लगाया गया, किसी के चीनी। बिन्द्रा, उसकी माँ और बहू के मुँह, आँख, नाक से पानी के पनाले छूट रहे थे। विन्ध्या बाबू खुश होकर बोले, "इसे कहते हैं मिर्च। अभी तो एक ही तरह की फली है, देखती जाओ कैसी-कैसी मिर्च खिलाता हूँ।"

किन्तु बिन्द्रा की माँ ने क्रोध से बर्तन पटक दिए और मिर्चों के सब पौधे उखाड़ देने की धमकी दी। विन्ध्या बाबू ने फ़ौरन घोषणा की कि जो उनके पौधे को हाथ लगाएगा उसके हाथ तोड़ दिए

जाएँगे। दोनों में अच्छी-खासी झड़प हो गई।

मिर्चों के और पौधे भी फल गए। मुहल्ले में विन्ध्या बाबू की मिर्चों की धूम मच गई। विन्ध्या बाबू का काम बढ़ गया। कुछ तो मिर्चों की चौकीदारी और कुछ लोगों को मिर्चें उगाने का पूरा इतिहास—मिर्च अपने आप उगाने की आवश्यकता और मिट्टी तैयार करने से लेकर स्वाद के तीखेपन तक—समझाने में काफी समय लग जाता।

तभी एक दिन बिन्द्रा ने कहा, "बाबूजी, महेश सरला से विवाह नहीं करेगा।"

विन्ध्या बाबू जल उठे। बोले, "क्या कहा ? महेश विवाह नहीं करेगा ? देखता हूँ कैसे नहीं करेगा। महेश तो क्या, उसके बाप को भी करना होगा।"

"लेकिन उसके बाप से तो हम करना नहीं चाहते!" बिन्द्रा ने कहा।

"अच्छा-अच्छा, बहुत होशियार मत बन। यह बता कि महेश विवाह क्यों नही करेगा ?"

"महेश ने साफ़ तो नहीं कहा लेकिन ऐसा लगता है कि सरला के माता-पिता न होने के कारण महेश के पिता राज़ी नहीं हुए।"

"हूँ, तू तो कहता था कि दोनों में प्रेम है।" विन्ध्या बाबू ने कहा। कुछ क्षण चुप रहकर फिर बोले, "लगता है मुझे ही कुछ करना पड़ेगा। मेरा सामान ठीक करा दे। मै शाम की गाड़ी से मेरठ जा रहा हूँ। और हाँ, थोड़ी-सी हरी मिर्चें भी रखवा देना। अब तो अपने घर की मिर्चों के बिना भोजन ही नहीं किया जाता। सब पौधों से तुड़वाना।"

o o o

विन्ध्या बाबू को देखते ही महेश के पिता बनवारीलाल ने कहा,

"भाई साहब, आप तो हमें और मेरठ को बिलकुल ही भूल गए। आना तो छोड़ ही दिया, चिट्ठी-पत्री भी नहीं लिखी।"

"क्या करूँ, कुछ ऐसे झंझटों में फँसा रहा कि आ ही न सका। आख़िरी बार तब आया था जब गगनबिहारी जाता रहा था।"

"गगनबिहारी क्या गया, मुहल्ला ही सूना हो गया।" बनवारी लाल ने कहा। उसकी इच्छा हुई कि सरला के विषय में पूछे किन्तु महेश का पत्र याद करके चुप रह गया।

विन्ध्या बाबू ने कहा, "बनवारीलाल, तुम्हारे पास बड़ी आशा से आया हूँ।"

"कैसी बातें करते है ,भाई साहब। आज्ञा दीजिए।"

"सरला को तो तुम जानते ही हो।"

"कौन सरला ?" बनवारीलाल ने पूछा।

"मेरी भतीजी, गगन की बेटी।"

"लो और सुनो। सरला को नही जानूँगा ? मेरी तो गोद में खेली है।"

"उसे तुम सचमुच अपनी बेटी बना लो। महेश के साथ · · ·"

"लेकिन भाई साहब, इस मामले में तो महेश की माँ जो चाहेगी वही होगा। मै इन झंझटों से अलग हूँ।"

विन्ध्या बाबू समझ गए, फिर भी कहा, "सो तो ठीक है। घर की मालकिन की बात तो चलनी ही चाहिए। उनसे पूछ लेना। मै तो दो-एक दिन यहीं हूँ।"

"अरे हाँ, आप ठहरे कहाँ हैं ? आपका घर तो किराए पर उठा है।"

"वहीं हूँ। दो कमरे ख़ाली हैं।" विन्ध्या बाबू ने बताया।

"जितने दिन आप यहाँ हैं, भोजन मेरे ही यहाँ करना पड़ेगा। मै कुछ नहीं सुनूँगा। शाम को आठ बजे मैं आपकी बाट देखूँगा।"

शाम को विन्ध्या बाबू अपनी मिर्च की पुड़िया सहित बनवारी-लाल के यहाँ पहुँचे। भोजन करते समय जब उन्होंने पुड़िया खोली तो बनवारीलाल ने पूछा, "भाई साहब, इस जादू की पुड़िया में क्या है?"

"जादू ही तो है।"

"क्या मतलब?"

"मिर्च!"

"मिर्च किसलिए?"

"बात यह है भाई," विन्ध्या बाबू ने कहा, "मुझे अपने घर की मिर्च छोड़कर और कोई भी मिर्च तेज़ नहीं लगती। खाने में मज़ा ही नही आता।"

"लो और सुनो। उल्टे बाँस बरेली को। अजी, अपना तो यही धंधा है। ऐसी-ऐसी मिर्च खिलाऊँ कि दिन में तारे दिखाई दे जायँ।"

"मै नहीं मान सकता।" विन्ध्या बाबू बोले।

"तो हो जाय शर्त।"

"अजी शर्त क्या बदनी है। तेज मिर्च खिलाओ तो गुरु मान लूँ।"

"फ़ैसला कैसे होगा?" बनवारी ने पूछा।

"तुम अपनी मिर्च निकालो, मै अपनी। दोनों को एक-दूसरे की मिर्चों मे से एक-एक खानी पड़ेगी जब तक एक आदमी हार न मान ले।"

"मंजूर। कल ग्यारह बजे रहे।"

"ठीक," विन्ध्या बाबू ने कहा, "लेकिन एक बात याद रखना। बीच मे न पानी पी सकते हैं, न मिठाई खा सकते हैं और न ही मुँह में घी, तेल, ग्लिसरीन, दही और मट्ठा लगा सकते हैं।"

"आप निसाखातिर रहिए। मुझे इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।" बनवारीलाल ने 'मुझे' शब्द पर ज़ोर दिया।

13

सर जगदीशचन्द्र बसु और मारकोनी ने यह तो खोज कर ली कि विद्युत यंत्रों द्वारा अंतरिक्ष में प्रसारित तरंगों की सहायता से समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान पर विना तार के भी कैसे पहुँचाए जा सकते हैं और इन्हीं खोजों के फलस्वरूप रेडियो, रेडियो-टेलीफ़ोन तथा टेलीविजन बने किन्तु यह किसी ने भी पता नहीं लगाया कि बिना यंत्रों के भी समाचार इतनी जल्दी कैसे फैल जाते है। और यह जानने का कोई उपाय भी नहीं। जिससे पूछिए यही कहेगा कि उसने किसी से सुना था।

ख़ैर, कहना यह है कि अगले दिन ग्यारह वजे तक इस अनोखे मिर्च मैच की ख़बर न केवल शहर में फैल गई बल्कि बनवारीलाल के घर—जो दूकान के ऊपर था—के सामने तमाशाईयों की इतनी भीड़ भी जमा हो गई कि शान्ति भंग होने की आशंका से पुलिस का एक सशस्त्र दस्ता अश्रुगैस के वमों से लैस होकर उस मुहल्ले में पहुँच गया। कई ट्रैफ़िक कान्स्टेबलों की ड्यूटी लग गई और पुलिस की रेडियो गाड़ी भी मुहल्ले के चक्कर लगाने लगी। ख़ोमचेवालों, गुब्बारेवालों और आईस्क्रीम के ठेलों ने यातायात बन्द कर दिया। जेबकतरों की बन आई। दूकानदारों ने अपनी दूकानें बढ़ा दी और लड़कों ने स्कूलों की छुट्टी कर दी और दफ़्तरवाले अपने दफ़्तर जाना भूल गए...।

बनवारीलाल की दूकान से मिलती हुई दूकान का नाम था 'कलकत्ता रेडियो कम्पनी'। उसके मालिक को दूर की सूझी, उसने एक-एक माइक्रोफ़ोन और एम्पलिफ़ायर (ध्वनि-वर्धक यत्र) और चार लाउडस्पीकर बनवारीलाल के घर पर लगा दिये और प्रोग्राम चालू कर दिया। लोगों ने सुना—

"भाइयो ! आप लोग का ई समाचार कोलकाता रेडियो कोम्पानी

से सुनाना होता हाय। थोड़ा ठो डेरी में आप झाल मैच—खोमा करुन (क्षमा कीजिए)—मिरिच मैच का आँखों-देखा हाल सुनेगा। हामारा शोहोर का श्री बोनोबारी लाल आर लाखनू (लखनऊ) का श्री बिन्धोबिहारी लाल जिनका वीच ई मैच होता हाय, मंच पर आ गया हाय। हाम आप लोगों का ई बात जनाना (बतलाना) माँगता जे श्री बिन्धोबिहारी लाल इसी पाड़ा (मुहल्ला) में आगाड़ी रहते थे आर आजकल लाखनू में राहाता हाय··· भाईयों, एक बात आर याद रखिये। कोलकाता रेडियो कोम्पानी आपका शोहोर का शब से पुरोनो (पुराना) आर जान-पहचान (जाना हुआ, प्रसिद्ध) वाला दोकान हाय। हमारा ईहा बिजली का शब रकम का नूतून ओ पुरोनो सामान बिकिरी आर मेरामत होता हाय। एक बार जोरूर आयेगा···"

कलकत्ता रेडियो कम्पनी का शेष प्रोग्राम हिन्दी में ही दिया जाएगा। ध्वनि-विस्तारक यंत्र से आवाज़ आई—"सुनिए ! एक बच्चा खो गया है, वह मेरे पास खड़ा रो रहा है। अपना नाम नहीं बता सकता। नीली बुश्शर्ट पहने है और हाफपेंट हाथ में पकड़े है। जिन साहब का हो, माइक के पास आकर ले जायँ···" इसके बाद माइक से बच्चे के रोने का नमूना पेश किया गया। लोगों ने अपने-अपने बच्चों के हाथ कसकर पकड़ लिए।

"वनवारी बाबू और विन्ध्या बाबू एक-दूसरे के सामने बैठ गए हैं··· दोनों अपनी-अपनी मिर्चो की पुड़िया खोल रहे हैं···

"लाला घरैती मल ! लाला घरैती मल ! आप की पत्नी की तबीयन बहुत ख़राब है। आपका लड़का आपको बुलाने आया है। आपको फ़ौरन घर जाना चाहिए। वहाँ आपकी सख़्त जरूरत है।"

लाला घरैती मल बुदबुदाए, 'उसे भी अभी मरना था !' और भीड़ में से निकलने की कोशिश करने लगे। एक ग्राहक की खोंमचेवाले

से मारपीट हो गई क्योंकि खोमचेवाले ने ब्लैक मार्केट के दाम लेने आरम्भ कर दिए थे ।

"भाइयो ! अब मैंच आरम्भ हो रहा है . . ."

पुलिस ने दो जेबकतरों को रंगे हाथों पकड़ लिया ।

बनवारीलाल ने विक्टोरिया का रुपया निकाल, अँगूठे और तर्जनी से रुपए को ठन्न से उछाल शेर-बकरी किया । विन्ध्या बाबू जीते । उन्होंने एक लम्बी हरी मिर्च बनवारीलाल को दी और एक स्वयं ली । दोनों ने मिर्च ऐसे खा ली जैसे मिर्च न हो मजनूँ की पसली (लखनऊ की ककड़ी) हो । एक बार सी भी नहीं की ।

इसके बाद बनवारीलाल की बारी थी । उसने जो मिर्च दी उसे खाकर विन्ध्या बाबू की आँखों में पानी आ गया और उन्होंने कहा, "अच्छी मिर्च है ।"

विन्ध्या बाबू की दी हुई मिर्च खाते ही बनवारीलाल उछल पड़ा । कुछ तो वास्तव में मिर्च तेज़ थी और कुछ औपचारिक रूप से प्रशंसा करनी थी । इसलिए उसने कहा, "बड़ी तेज़ है । इसे खाने में ज़रा देर लगेगी ।"

दोनों एक-एक टुकड़ा कुतरते, थोड़ी देर मिर्च के टुकड़े को जीभ से मुँह मे इधर-उधर घुमाते जिससे सब स्वाद-बिन्दुओं को मिर्च के तीखेपन का परिचय मिल जाय, फिर चबा डालते । तीन-चार मिर्च खाते-खाते दोनों की हालत बिगड़ चली । उनके आँख और नाक से तो पनाले बह ही रहे थे, लार से भी उन्होंने एक-एक तौलिया गीला कर दिया । विन्ध्या बाबू समझ गए कि उनसे अधिक देर मैंच मे नहीं रहा जाएगा । उधर बनवारीलाल भी सोच रहा था—और कितनी देर ?

बनवारीलाल की दी हुई मिर्च का पहला टुकड़ा काटते ही विन्ध्या बाबू को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उनकी जीभ पर श्रीनगर (गढ़वाल) के

बिच्छू ने डंक मार दिया हो। उन्होंने पढ़ रखा था कि इच्छा-शक्ति द्वारा सब कुछ सम्भव है इसलिए उन्होंने प्रयत्न किया कि उस समय दिल्ली के सोहन हलुवे, बाग़ बाज़ार, कलकत्ता के रसगुल्ले, आगरा के पेठे, मथुरा के खुर्चन, देवघर के पेड़े और मैसूर के मैसूरपाक के विषय में सोचें किन्तु किसी का भी स्वाद याद नहीं आया। उधर मिर्च का टुकडा उनकी जीभ पर डंक मारे जा रहा था। विन्ध्या बाबू से नहीं रहा गया और वह गला फाड़कर चिल्लाए "मर गया !"

लोग दौड़े—किसी ने पंखा किया, किसी ने उनके सिर पर गीला तौलिया लपेट दिया। बनवारीलाल भी मुँह में आग दबाए बैठा था। विन्ध्या बाबू ने कहा, "मानते हैं तुम्हारी मिर्च को, क्या नाम है ?"

"यह है मद्रास की उषी मुलागाई (सूई मिर्च)। अचार में पड़ती है।" बनवारीलाल ने बताया।

किसा प्रकार विन्ध्या बाबू और बनवारीलाल ने एक-एक उषी-मुलागाई समाप्त की। अब विन्ध्या बाबू ने एक ऐसी मिर्च निकाली जो हरसिंगार की कली जैसी सुन्दर तथा उसी के रंग-रूप और आकार की थी। वह थी बिहार की प्रसिद्ध लौंगिया मिर्च। बनवारीलाल ने एक टुकड़ा चबाते ही मुँह फाड़ दिया और लम्बे-लम्बे साँस लेने लगे। उसके कान के भीतर कुछ चटाचट चटखने लगा और साथ ही कुछ ऐसी भनभनाहट होने लगी जैसे बिजली के हाई-ट्रान्समिशन तारों के खम्भों में होती है। बनवारीलाल चिल्लाया, "उफ़ ! मार डाला !" और 'हाय' करके लेट रहा।

विन्ध्या बाबू को भी मिर्च कुछ कम तेज़ नहीं लगी किन्तु वह होम ग्राउण्ड पर थे। उनकी जीभ उस तेज़ी से परिचित थी, फिर भी उन्हें पूरी मिर्च खाने में काफ़ी देर लगी। बनवारीलाल को तब तक 'हाय, हाय' करने से ही फ़ुर्सत नहीं मिली थी।

"तीन-चार मिर्च खाते-खाते दोनों के आँख और नाक से पनाले बहने लगे"

किसी प्रकार बनवारीलाल ने भी मिर्च खा ही ली किन्तु विन्ध्या बाबू को यह विश्वास हो गया कि बनवारीलाल और मिर्च नहीं खा सकता था। उसमें आँख खोलने की भी शक्ति नही रही थी यद्यपि वह तब भी हार नहीं मान रहा था। उसने अपनी अन्तिम जोड़ी में से एक मिर्च विन्ध्या बाबू को दी और कहा,

"विन्ध्या बाबू, यह कालसी (देहरादून) की मिर्च है। ज़रा संभलकर खाइए।"

विन्ध्या बाबू ने मिर्च का एक छोटा-सा टुकड़ा दाँत से काटा और खड़े होकर नाचने लगे। उन्होने दोनों हाथों से अपना मुँह पीट लिया। जब वह कत्थक, भरतनाट्यम और कथाकली नृत्यों की सब द्रुत मुद्रा और गति समाप्त कर चुके तो उन्होंने अनुभव किया कि वह उस पूरी मिर्च को तो किसी प्रकार खा लेंगे किन्तु उसके बाद मैच से बाहर। वह दूसरा टुकड़ा काटने ही वाले थे कि उन्होंने देखा कि बनवारीलाल ने तब तक मिर्च को दाँतों से छुआ भी नही था। उसका हाथ बार-बार मुँह तक जाता किन्तु फिर गिर पड़ता। स्पष्ट था कि जहाँ तक बनवारीलाल का प्रश्न था, मैच समाप्त हो चुका था। केवल हारने के कारणों का पोस्ट-मार्टम करने की देर थी।

कलकत्ता रेडियो का अनाउन्सर चिल्ला रहा था, "भाइयो! बड़ा मोजा का बात हुआ हाय। बिन्धो बाबू आभी खाली मुख से पानी गिराता आर जे बोनोबारी बाबू हाय ओ तो आर भी खोराप ओबोस्था हाय। ओ तो मिरिच-ओई जे डेराडुनउवाला (देहरादून वाला) मिरिच हाय—को आभी मूख में भी नहो दिया हाय। आगाड़ी जो मिरिच खाया था ओ ही से उसका मूख में जो आगुन लागा हाय ओ ठांडा नहीं हुआ। विन्धो बाबू डेराडुनउवाला मिरिच का एक टुकड़ा खाया है···बोनोबारी बाबू भी खाने माँगता···नहीं माँगता···विन्धो बाबू

फिन खाने माँगता · · · नहीं मॉगता · · ·"

सड़क पर विन्ध्या बाबू का भाव बढ़ गया था। उनके और बनवारीलाल के भावों में मिनटों में एक-छ. का अन्तर हो गया।

विन्ध्या बाबू के मस्तिष्क में कितनी ही बातें क्षणभर में कौंध गई। उनके आने का उद्देश्य, सरला, गगनबिहारी, महेश आदि सब अपनी-अपनी बात कहने लगे। बनवारीलाल हार गया तो जिन्दगी-भर नहीं भूलेगा। विन्ध्या बाबू को अपना दुश्मन मानेगा और दुश्मन को समधी थोड़े ही बनाएगा। विन्ध्या बाबू ने मिर्च का एक और टुकड़ा काटा और थूक दिया।

उन्होंने हाथ से मिर्च फेंक दी और चिल्लाए, "मान गए बनवारी तुम्हारी मिर्च को। तुम ही जीते।"

सरला और महेश की सगाई पक्की हो गई।

14

मेरठ से लौटते ही जब विन्ध्या बाबू अपनी मित्र-मण्डली मे पहुँचे तो कुछ अजब नक़्शा देखा। पहली बार वे बूढ़े पेंशन, पुराने ज़माने, असली घी और बहू-बेटों की चर्चा छोड़कर बिलकुल नई बात पर बड़े ज़ोर-शोर से बहस कर रहे थे। वर्माजी, जो अमेरिका के पक्षपाती थे—उनका लड़का फ़ोर्ड फाउण्डेशन के वज़ीफे पर अमेरिका गया हुआ था—कह रहे थे, "देखा साहब ! आखिर अमेरिका ने भी दिखा दिया कि वह किसी से कम नहीं है।"

"अमेरिका ने क्या दिखा दिया, वर्माजी ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा किन्तु उनकी बात किसी ने सुनी ही नही। गुप्ताजी, जो किसी कारण सरकार द्वारा समय से पूर्व रिटायर कर दिए जाने के कारण इन दिनों 'लाल पार्टी' के समर्थक थे, बोले, "अजी, क्या खाक दिखा दिया ! कहॉ यूरी गैगरिन की अंतरिक्ष यात्रा और कहाँ बेचारे कमांडर शेर्ड

की उड़ान ! उन दोनों में क्या तुलना ? अमेरिकन लोग तो शेपर्ड को धरती पर भी नहीं उतार सके। बेचारा समुद्र में गिरा।"

"अरे भाई, कौन है यह यूरी गैगरिन और कमांडर शेपर्ड ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा लेकिन उनकी बात फिर अनसुनी कर दी गई। वर्माजी ने कहा, "अभी तो आरम्भ ही है। देखिए कितनी जल्दी अमेरिका रूस को पीछे छोड़ देगा।"

'जब छोड़ देगा तब देखा जाएगा। अभी तो बरसों पीछे है और तब तक रूस क्या चुपचाप बैठा रहेगा ? वह तो तब तक चाँद पर भी आदमी पहुँचा देगा।" गुप्ताजी ने कहा।

"अरे भाई, किस बात की बहस है ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा। अब की बार शर्माजी ने सुना और उत्तर दिया, "अमेरिका और रूस की अंतरिक्ष-यात्रा सम्बन्धी प्रगति की बात हो रही है।"

"कमांडर शेपर्ड कौन है ?"

"एक अमेरिकन है जो कल ही अंतरिक्ष की उड़ान करके आया है।"

"और यूरी गैगरिन ?"

"यूरी गैगरिन रूसी है जो विश्व का सर्वप्रथम मानव है जिसने अंतरिक्ष में पृथ्वी की परिक्रमा की थी।"

"कब ?"

"12 अप्रैल, 1961।"

"अच्छा ?" विन्ध्या बाबू ने आश्चर्य से कहा।

"तो आपको पता ही नहीं था ? आखिर आप थे किस दुनिया में ?" शर्माजी ने पूछा।

विन्ध्या बाबू कैसे कहते कि वह उस समय दिल की दुनिया में सपने देख रहे थे। उन दिनों वह गोदावरी के प्रेमी थे। विन्ध्या बाबू को

अपने अज्ञान पर बड़ी शर्म आई। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह अतरिक्ष-विज्ञान के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करेंगे।

अतरिक्ष यात्रा सम्बन्धी जो भी पुस्तक विन्ध्या बाबू को मिली वह खरीद लाए और रात-दिन उन्ही पुस्तकों में डूबे रहने लगे किन्तु इस अध्ययन मे बाधा पड़ गई। हुआ क्या कि उनकी बछिया व्याह गई और उन्हें उसकी ओर ध्यान देना पड़ा। घर मे खुशी का क्या कहना! विन्ध्या बाबू की पत्नी ने दूध, दही, मट्ठा, मक्खन आदि के बर्तन गोदाम से निकलवाए और बिन्द्रा के बच्चों ने अपने-अपने गिलास ठोक-पीट और टाँकी लगवा कर सीधे किए। यद्यपि आरम्भ के दो-तीन दिन का दूध तो किसी के काम आने वाला नहीं था क्योंकि बच्चों को खीस भी नही मिलना था। फिर भी जिस दिन पहले-पहले गाय दुही जाने वाली थी, घर में बड़ा उत्साह था।

गाय दुहने का काम बिन्द्रा की माँ का होना चाहिए था लेकिन विन्ध्या बाबू ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि गाय वह ही दुहेंगे। बिन्द्रा की माँ ने प्रतिवाद किया, "यह काम मर्दों का नही है।"

"तो शहर मे जो कई हज़ार ग्वाले हैं वे मर्दों के वेश में औरतें होंगी!"

"तो तुम ग्वाले हो?"

"तुमने यह कैसे कह दिया कि गाय दुहना मर्दों का काम नहीं है?"

"परिवारों मे मर्द नही गाय दुहते।"

"लेकिन इस परिवार में मर्द ही दुहेगा।"

"मेरे दुहने में क्या हर्ज है?"

"तुम्हारा क्या ठिकाना, ठीक से सफ़ाई करो या न करो या बछड़े के हिस्से का दूध भी निकाल डालो।"

"क्यों नहीं, हमने थोड़े ही कभी गाय पाली है . . ."

"पाली हो या न पाली हो लेकिन आज शाम को इस गाय का दूध मैं ही निकालूँगा।"

घर में महिलाओं—बिन्द्रा की माँ, बहू और सरला की मीटिंग हुई। बिन्द्रा की बहू ने कहा, "माँजी, बाबूजी को यह क्या सूझ रही है ?"

"अरी देख लेना, ज़्यादा दूध पिलाकर बछड़े को मार डालेंगे।"

"ताई, मैं बताऊँ एक तरकीब !" सरला ने कहा और तीनों महिलाएँ सिर जुटाकर खुसुर-पुसुर करने लगीं और बीच-बीच में सरला और बिन्द्रा की बहू किलकारियाँ मार-मार कर हँसने लगती। बिन्द्रा की माँ उन्हें प्यार से डाँटतीं, "अरी कलमुहियों, चुप रहो !" लेकिन फिर स्वयं भी हँसने लगतीं। वे तीनों अपनी योजना बनाकर अपने-अपने काम में लग गईं।

शाम को जब बच्चे खेल से और विन्ध्या बाबू वायु-सेवन से लौटे तब गाय दुही जाने का कार्य आरम्भ हुआ।

विन्ध्या बाबू गाय के पास लकड़ी के नये बने हुए नीचे स्टूल पर आसन जमाकर बैठ गए। उनके एक ओर बिलकुल नई पीतल की बाल्टी थी और दूसरी ओर कई शीशियाँ थी। परिवार के अन्य सदस्यों ने भी रंगमंच के चारों ओर अपने-अपने स्थान ले लिए—महिलाएँ साड़ियों के पल्ले मुँह में लगाकर हँसी रोके हुए थीं। बच्चे फ्रंट सीट घेरे हुए थे।

विन्ध्या बाबू ने गाय के थनों को पहले डिटौल के पानी से, फिर सादे पानी से धोया। अँगुलियों पर ज़रा-सा शुद्ध घी लगाया और उसके बाद जैसे ही उन्होंने गाय का थन दबाया और टीं . . . ई . . . ई . . . की आवाज़ के साथ दूध की धार ख़ाली बाल्टी के पेंदे पर बोली, कई
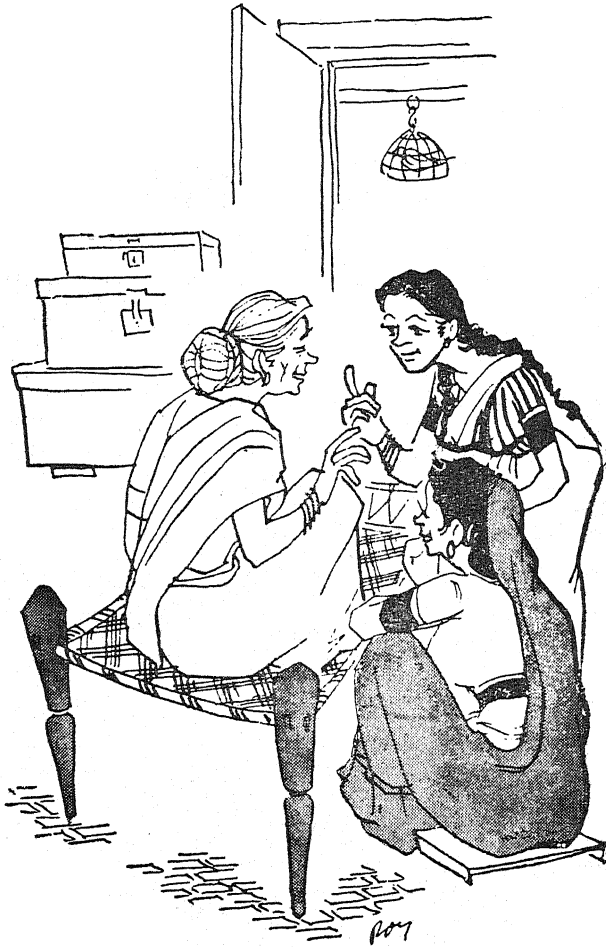
"ताई, मैं बताऊँ एक तरकीब....." सरला ने कहा।

बातें एक साथ हुई ।

उत्सव मनाने का चून्नू का विचार बिलकुल मौलिक था। पहली बार घर में गाय दुही जाने के उपलक्ष में बाजा बजना ही चाहिए, यह सोचकर चुन्नू कागज का भोंपू लगी हुई पीं-पीं ले आया था। पहली धार बाल्टी में पड़ते ही उसने पीं-पीं पूरा ज़ोर लगाकर बजा दी। विन्ध्या बाबू और गाय दोनों ही चौक पड़े। शायद गाय का थन भी ज़ोर से दब गया था। गाय ज़ोर से रंभाई और उसने अपनी पिछली टाँगे बड़े ज़ोर से हवा में उछालीं और विन्ध्या बाबू ने ख़ुशी के मारे या और किसी कारण से, नटों की भाँति हवा में और ज़मीन पर तीन-चार कलाबाज़ियाँ खाई और शान्त पड़ गए। गाय की लात से उड़कर बाल्टी बिंद्रा की माँ की टाँग पर लगी और वह हाय करके वहीं बैठ रहीं। बिन्द्रा ने चुन्नू का कान पकड़कर एक झाँपड़ रसीद किया। उसने दर्द से और मुन्नू तथा गुड्डू ने डर से रोना-चिल्लाना आरम्भ कर दिया। उधर बिन्द्रा की बहू और सरला मुँह में पल्ला ठूँसकर भागीं और अपने-अपने पलंग पर, पागलों की तरह हँसती हुई लोट-पोट होने लगीं।

विन्ध्या बाबू अपने पलंग पर पड़े कराह रहे थे और चुन्नू उनके पास खड़ा था। कुछ देर विन्ध्या बाबू को देखकर बोला, "दादाजी, गाय ने आपको लात क्यों मारी ?"

"मैं उसका दूध जो निकाल रहा था।"

"दादी को तो गाय ने नहीं मारा।"

"तेरी दादी ने थोड़े ही दूध निकाला था।"

"हाँ, निकाला था।"

'क्या···?" विन्ध्या बाबू दर्द के बावजूद उठकर बैठ गए। उन्होंने पूछा, "तेरी दादी ने दूध निकाला था ?"

"हाँ।"

"कब ?"

"जब आप घूमने गए थे। माँ और सरला दीदी भी थीं।"

15

विन्ध्या बाबू का मन घर से विरक्त हो गया। उन्होंने अंतरिक्ष-यात्रा के विषय मे फिर सोचना आरम्भ कर दिया। कुछ दिन बाद जरमन तीतोव, ग्रिस्सम और ग्लेन भी अतरिक्ष यात्रा कर आए। अब तो विन्ध्या बाबू के दिमाग़ मे भी अंतरिक्ष यात्रा की पूरी धुन समा गई और उन्होंने जोर-शोर से इसके लिए तैयारी आरम्भ कर दी। इस विषय पर उन्होंने इतना पढ़ा कि चौबीसों घंटे उनके मस्तिष्क में गुरुत्वाकर्षण, गुरुत्वाकर्षणातीत गति, 'जी' (गुरुत्वाकर्षण की इकाई), भारहीनता, रॉकेट, ठोस ईंधन आदि शब्द घूमने लगे। उन्होंने हाइड्रोजन गैस तथा गुब्बारों से कुछ छोटे-मोटे प्रयोग करने भी आरम्भ कर दिए। इसके लिए हाइड्रोजन गैस के सिलिंडर तथा प्लास्टिक के गुब्बारे भी अपने प्रॉविडेण्ट फंड से मिले रुपयों से ख़रीद लाए।

एक दिन विन्ध्या बाबू पुस्तकालय जाने के विचार से, अपने ध्यान में मग्न, बाहर जाने लगे। बिन्द्रा की माँ ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो ?"

"अभी कहाँ जा रहा हूँ, जब तक पाँच मील प्रति सेकिंड की चाल न हो जाय कहीं नहीं जा सकता।"

"क्या ऊटपटांग बातें कर रहे हो ?"

"ऊटपटांग नहीं, ठीक बात कह रहा हूँ। जब तक पाँच मील प्रति सेकिंड अर्थात् अठारह हज़ार मील प्रति घंटा की चाल न हो जाय, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर नहीं जा सकता। फ़िलहाल पाँच-छः हज़ार मील प्रति घंटा की चाल से भी काम चल जाएगा।"

"हाय-हाय, कोई इन मरी किताबों में आग क्यों नहीं लगा देता!

सठिया तो पहले ही गए थे, अब पढ़-पढ़कर दिमाग़ भी ख़राब कर लिया।"

"दिमाग़ मेरा नहीं, तुम्हारा ख़राब हुआ है। तुम्हारी समझ में ये बातें नहीं आयेंगी।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

"अच्छा, खाना कब खाओगे ?" बिन्द्रा की माँ ने पूछा।

"खाना, अब खाना नहीं खाऊँगा। मै ऐसी गोलियों का प्रयोग कर रहा हूँ जो भूख मार दें लेकिन कमज़ोरी न लाएँ।"

"ऐसी गोलियों से भूख के साथ-साथ जान भी मर जाएगी।"

"तुम तो हो मूर्ख। हमारे देश के प्राचीन ऋषि . . ." कहते-कहते विन्ध्या बाबू रुक गए और फिर सहसा चिल्लाए, "मिल गया ! ! !"

"क्या मिल गया ?" उनकी पत्नी ने पूछा।

"योग।"

"योग ?"

"हाँ, सारे प्रश्नों का उत्तर है योग। योग से सब कुछ हो सकता है, मनुष्य यह शरीर छोड़ सकता है, पृथ्वी छोड़ सकता है।"

"अभी क्या जल्दी है, कुछ दिन बाद तो छोड़ोगे ही !" बिन्द्रा की माँ ने चिढ़कर कहा।

"लेकिन अभी तो मै पृथ्वी से ऊपर उठकर वापस भी लौटना चाहता हूँ। मेरे लिए तो योग ही एक रास्ता है। रूस और अमेरिका वाला मार्ग अपनाने के लिए अपने पास न पैसा है, न वैज्ञानिक और न यंत्र . . ."

विन्ध्या बाबू ने गुब्बारे और हाइड्रोजन गैस के सिलिण्डर तो कमरे के एक कोने में खिसका दिए और योग सम्बन्धी पुस्तकों तथा योगी गुरु की खोज में लग गए। कुछ पुस्तकें मथुरा में मिलीं, कुछ आसाम में और कुछ मदुराई में। विन्ध्या बाबू पुस्तकों के अध्ययन में

लग गए। गुरु की खोज फिर भी जारी रही।

एक दिन विन्ध्या बाबू एक लामा—तिब्बती साधु—को घर लाए। दोनों व्यक्ति विन्ध्या बाबू के कमरे में बन्द हो गए। अन्दर से मंत्रोच्चार के अतिरिक्त बीच-बीच में किसी के कराहने की आह, उँह, हाय आदि आवाज़े भी आने लगीं। सरला ने कहा, "ताई, ताऊजी के कमरे से हाय-हाय की आवाज़ आ रही है।"

बिन्द्रा की माँ चिल्लाई, "अरे बिन्द्रा ! देख तो सही तेरे बाबूजी क्या कर रहे हैं। कहीं वह भोटिया उनकी जान न निकाल दे।"

बिन्द्रा ने शोर मचाकर द्वार खुलवाया तो विन्ध्या बाबू बिन्द्रा को उनकी जान बचाने के लिए धन्यवाद देने के बदले गाली देने लगे।

वह तिब्बती साधु रोज आने लगा और भोजपत्र पर लिखी संस्कृत पुस्तकों की सहायता से विन्ध्या बाबू का योगाभ्यास शान्तिपूर्वक चलने लगा किन्तु यह शान्ति अधिक दिन नहीं रही।

एक दिन बिन्द्रा बाहर से आकर बोला, "माँ, सड़क पर बैठा हुआ एक आदमी कई दिन से घर को ताकता रहता है।"

"क्यों ?"

"पता नहीं। बाबूजी ने कोई गुल खिलाया होगा।"

अगले ही दिन इसका पता भी चल गया। उस व्यक्ति ने स्वयं आकर अपना परिचय दिया। वह सी० आई० डी० (पुलिस का अपराध जाँच खोज विभाग) का आदमी था और उस तिब्बती तथा विन्ध्या बाबू के सम्बन्ध के विषय में जाँच करने आया था। आखिर चीन ने न केवल तिब्बत को हड़प लिया है बल्कि हमारी सीमा का उल्लंघन करके हमारे बारह हज़ार वर्गमील से अधिक क्षेत्र पर भी अनधिकार क़ब्ज़ा किए बैठा है। सरकार को सतर्कता तो रखनी ही चाहिए।

विन्ध्या बाबू पुलिस दफ़्तर दौड़ते-दौड़ते और प्रश्नों के उत्तर

देते-देते परेशान हो गए। किसी प्रकार पुलिस से जान छूटी। उन्होंने अपने तिब्बती गुरु को गुप्त दक्षिणा देकर विदा किया और अकेले अभ्यास करने लगे किन्तु गुरु बिना ज्ञान मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। तरह-तरह की कठिनाइयाँ आ रही थीं। फलस्वरूप उनका स्वभाव चिड़चिड़ा होता जा रहा था।

एक दिन विन्ध्या बाबू कोठरी में बंद होकर योगाभ्यास कर रहे थे और बाहर उनके पोते चुन्नू, मुन्नू और गुड्डू स्वभावानुसार शोर मचा रहे थे। खेल-खेल में चुन्नू और मुन्नू में पहले तो जुबानी लड़ाई हुई, फिर मार-पीट। जब दोनों एक-दूसरे पर ज़ोर आज़माई कर चुके तो दोनों ने चिल्ला-चिल्लाकर रोना आरम्भ कर दिया। गुड्डू यद्यपि इस संग्राम का तटस्थ दर्शक था किन्तु बड़े भाइयों को रोता देखकर उसने भी मुँह ऊपर उठाकर अपने स्वर-तंतुओं को खुली छूट दे दी। विन्ध्या बाबू सहसा द्वार खोलकर बाहर आए और तीनों के एक-एक धौल जमाकर डाँटने लगे। बच्चों का विलाप और भी बढ़ गया। बिन्द्रा की माँ और बहू दौड़ी आई। बहू तो बच्चों को अलग ले जाकर चुप कराने में लग गई किन्तु बिन्द्रा की माँ विन्ध्या बाबू पर बरस पड़ीं।

"इतना हल्ला क्यों मचा रहे हो ?"

"हल्ला मैं मचा रहा हूँ या तुम्हारे लाड़ले पोते मचा रहे हैं !"

"क्या हुआ जो मचा रहे है ? बच्चे तो हल्ला मचायेंगे ही।"

"यहाँ अभी तक घंटी नहीं बजी और तुम पूछती हो क्या हुआ।"

"कैसी घंटी ?" बिन्द्रा की माँ ने पूछा।

"यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

"कुछ कहोगे भी या अंट-संट बोले जाओगे ?"

"इतना हल्ला क्यों मचा रहे हो ?"

"तो सुनो ! चालीस दिन साधना करने से घंटी की आवाज़ सुनाई पड़नी चाहिए। यहाँ साधना करते-करते पैंतालीस दिन हो गए और अभी घंटी क्या घुँघरू की आवाज भी सुनाई नहीं दी।"

"यह घर है घर। यहाँ घुँघरू, घंटी कुछ नहीं सुनाई देगी।"

"सुनाई कहाँ से दे ? जब ये राक्षस चुप हों तभी तो ठीक से ध्यान जमे और घटी सुनाई दे।"

"घटी कौन वजाता है ?"

"मेरा वाप !" विन्ध्या बावू ने क्रोध से कहा, "कहाँ से कूड़ मग़ज़ पल्ले पड़ गई। अरे, ध्यान लगाने से कान में अपने आप घंटी की आवाज आने लगती है। उसे कहते हैं ब्रह्मनाद। जब वह सुनाई देने लगे तो समझो कि साधना सफल हुई। इसके बाद आगे का कोर्स चलेगा।"

"आगे का कोर्स कैसा ?"

"ऊपर उड़ने का।"

"क्यों बुढ़ापे में हड्डियाँ तुड़वाने पर तुले हो ?"

"तुमसे मतलब ? हड्डियाँ टूटेंगी तो मेरी टूटेंगी। तुम्हारी तो केवल चूड़ियाँ टूटेंगी।"

"ख़बरदार जो मुझे गाली दी !" बिन्द्रा की माँ ने धमकी दी।

"तुम भी ध्यान से सुन लो। अब किसी ने शोर मचाया तो फिर घर में या तो वही रहेगा या मैं ही रहूँगा।"

"यह घर है, मसान नहीं। घर में तो शोर मचेगा ही। तुम्हें अपना योग-वोग जो भी करना है, बाहर जाकर करो।" बिन्द्रा की माँ ने भी बिगड़कर कहा।

उसी दिन बनवारीलाल की चिट्ठी मिली। महेश और सरला के विवाह की तारीख़ ठीक करने के लिए लिखा था किन्तु विन्ध्या बाबू

को उन दिनों योग छोड़कर और कुछ भी सोचने का अवकाश नहीं था।

16

विन्ध्या बाबू शहर से बाहर नदी के किनारे बैठकर योग साधना करने लगे। घंटों आँखें बन्द किए रहते यद्यपि केवल कुछ ही क्षणों के लिए ध्यान केन्द्रित होता। धीरे-धीरे इस क्रिया में उन्नति होती गई किन्तु तभी एक और मुसीबत आ गई। जब से विन्ध्या बाबू ने योग साधना आरम्भ की थी तब से वह अपनी वेशभूषा की ओर से उदासीन हो गए थे। खाना-पीना बहुत कम हो गया था, उनके कपड़े मैले-कुचैले और फट-से गए थे, दाढ़ी बढ गई थी, आँखें लाल रहने लगी थीं। घंटी बजने में देर होने के कारण वह किसी भी प्रकार के विघ्न से चिढ़ जाते थे। जो कोई पास आता उसे डाँटकर भगा देते। फल यह हुआ कि लोगों में ख़बर फैल गई कि नदी के किनारे एक पहुँचे हुए साधु आये हुए हैं।

एक दिन एक बुढ़िया विन्ध्या बाबू के पास आई और बड़ी श्रद्धा से आठ नये पैसे (पाँच पुराने पैसे) उनके पैरों के पास रखकर बोली, "महाराज, मेरी बेटी के कोई सन्तान नहीं है। ऐसी भभूत दो कि उसके बच्चा हो जाय।"

"माई, मेरे पास भभूत, दवा कुछ नहीं है।" विन्ध्या बाबू ने कहा, किन्तु बुढ़िया को उनकी बात का विश्वास नहीं हुआ। वह समझी बाबाजी टालना चाहते हैं। वह प्रार्थना करती रही। उस पर समझाने, डराने, धमकाने का भी कोई प्रभाव न पड़ा। हारकर विन्ध्या बाबू ने ढोंग किया। आँखें बन्द करके कुछ गुनगुनाये और फिर नगर के एक प्रसिद्ध वैद्य का नाम बताते हुए कहा, "बेटी को उस वैद्य के पास ले जा। भगवान् की इच्छा से कल्याण होगा।"

वृद्धा की बेटी का कल्याण चाहे हुआ हो या न हुआ हो किन्तु उस दिन से लाटरी, सट्टा और घुड़दौड़ का नम्बर माँगने वाले सम्पत्ति, सन्तति, नौकरी, प्रोमोशन, तबादला चाहने और रुकवाने के इच्छुक; मुक़दमे में जीत, दुश्मन का नाश और मुसीबतों से बचना चाहने वाले भक्तों की भीड़ इतनी बढ़ी कि विन्ध्या बाबू को वह स्थान छोड़ देना पड़ा। एक जंगल में जाकर उन्होंने ध्यान लगाना आरम्भ किया। जब वह आध घंटे तक अपना ध्यान केन्द्रित करने में सफल हो गए तब एक दिन सहसा घंटी की आवाज सुनाई पड़ी। विन्ध्या बाबू प्रसन्नता से उछल पड़े किन्तु कुछ ही क्षण पश्चात् अपने सामने से एक गाय—जिसकी गर्दन से लटकी घंटी टुनटुना रही थी—जाती देखकर उन्होंने अपने सिर पर दुहत्तड़ मार लिया। एक बार तो उन्हें इतनी विरक्ति हुई कि उन्होंने योग-वोग का सब धन्धा ही छोड़ने का विचार किया किन्तु फिर उन्हें भी ज़िद चढ़ गई और वह पुस्तक में बताई रीति से साधना में लगे ही रहे।

अन्ततः एक दिन विन्ध्या बाबू को वास्तव में ब्रह्मनाद सुनाई दिया। उनके अनुसार मन पर इतना अधिकार हो जाने के पश्चात् ध्यान लगाने के लिए जंगल में जाने की आवश्यकता नहीं रह गई थी। वह घर पर ही कहीं भी बैठ, अपने चारों ओर के वातावरण को भूलकर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते थे।

अन्तरिक्ष यात्रा की अगली सीढ़ी थी अपने आपको भार-मुक्त करना। तिब्बती द्वारा दी हुई पुस्तक में ऐसे ऋषियों के उदाहरण दिये हुए थे जो अधर में बिना किसी सहारे अवस्थित वर्षों तपस्या करते रहे थे। पुस्तक में शरीर को भारमुक्त करने का योग दिया हुआ था। विन्ध्या बाबू उसी के सहारे अभ्यास करने लगे। सबसे पहले उन्होंने अपनी श्वास क्रिया पर नियंत्रण करना आरम्भ किया और कुछ दिन

बीतते-बीतते वह अपनी शारीरिक क्रियाओं को कुछ देर के लिए स्थगित कर देने में सफल भी हो गए।

इसके पश्चात् कुछ कठिन आसनों की बारी आई। विन्ध्या बाबू की पुरानी जंग लगी हड्डियाँ, उनमें भला लोच कहाँ! फिर भी उन्होंने हिम्मत नही हारी। उन पर तो अतरिक्ष यात्रा का भूत सवार था। वह लगे ही रहे किन्तु कभी-कभी तो कठिनाई में फॅस जाते। आसनों में हाथ-पैर ऐसे उलझ जाते कि फिर मुश्किल से छूटते। एक दिन वह एक कठिन तथा उलझे हुए आसन का अभ्यास कर रहे थे जिसमें गर्दन, बाँह तथा एक टाँग के बीच मे आ जाती थी और पैर का अंगूठा हाथ से पकडा हुआ होता था। किसी प्रकार साँस रोककर, शरीर मोडकर और ज़ोर लगाकर विन्ध्या बाबू ने अपने हाथ-पैर और गर्दन उचित दिशा मे मोड़ लिए किन्तु कुछ ऐसा पेच पड़ा कि उनकी गर्दन फॅस गई और छुटाए न छूटे। उनका दम घुटने लगा और मुँह से गों ··गों····की आवाज़ें आने लगी—गला फाड़कर चिल्ला भी नही सके।

बिन्द्रा की माँ और बहू ने ये आवाजे सुनी। बिन्द्रा नहा रहा था और सरला पढ़ रही थी। बिन्द्रा की बहू ने अपनी सास से कहा, "माँ जी, बाबूजी के कमरे से कैसी आवाज़ें आ रही है?"

"आने दे। यह तो रोज़ हा का धन्धा है। इनकी तो बुद्धि भिरष्ट हो गई है। देख लेना ये तो किसी दिन ऐसे ऊटपटांग के कामों मे मरेंगे ही, साथ में घरवालों को भी जेल भिजवा देंगे।" बिन्द्रा की माँ भुनभुनाई।

"फिर भी देख तो लो, माँजी।" बिन्द्रा की बहू ने सुझाया।

"देखूँ कैसे? दरवाज़ा तो भीतर से बन्द है। रहने दे, जैसा करेंगे वैसा भरेंगे।

उधर विन्ध्या बाबू की जान साँसत मे थी। हाथ, पैर और गर्दन

की गुत्थी छूट ही नहीं रही थी और उनके प्राण अब निकले तब निकले की स्थिति में थे। आखिर एक बार अन्तिम ज़ोर लगाकर विन्ध्या बाबू स्वनिर्मित नागपाश से मुक्त हो ही गए और झटके से कमरे के कोने मे पड़े सामान के ऊपर जा गिरे। साथ ही उनके मुँह से एक ज़ोर की चीख निकली और वह धीरे-धीरे हवा मे उठते हुए कमरे की छत से जा लगे और वहीं से चिल्लाए, "विन्द्रा की माँ ! बिन्द्रा ! बचाओ !"

चीख़ सुनकर बिन्द्रा की माँ और बहू दौड़ी आई। द्वार तो बन्द था किन्तु बूढ़े को सकट में जानकर वुढ़िया मे पता नहीं कहाँ से इतनी शक्ति आ गई कि उसने कुल्हाड़ी के दो-चार वार करके ही दरवाज़ा तोड़ दिया और "क्या हुआ?" कहती हुई कमरे में घुसी किन्तु कमरा खाली पाया।

"अरे मै यहाँ हूँ।" त्रिशकू की भाँति अधर में लटके हुए विन्ध्या बाबू ऊपर से बोले।

"उई…ई…ई · " बिन्द्रा की माँ के मुँह से चीख़ निकली और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। बिन्द्रा की बहू ने भी अपनी सास का अनुसरण करने में देर नही की। अन्तर इतना ही था कि उसका गला जवान होने के कारण उसकी चीख न केवल पढ़ती हुई सरला तक पहुँची, गुसलखाने में नहाते हुए बिन्द्रा के कानों में पानी गिरने के शोर के बावजूद पहुँचो बल्कि पास-पडोस के घरों में भी पहुँच गई।

सरला चीख सुनकर हड़बडाकर जो भागने लगी तो उसका पाँव साड़ी मे उलझ गया और वह विन्ध्या बाबू के कमरे तक पहुँचने के पहले ही गिर पड़ी। उसका सिर चौखट से टकराया और वह बेहोश हो गई।

चीख़ सुनकर एक बार तो बिन्द्रा नंगा ही गुसलखाने से भाग निकला। ध्यान आते ही वापस लौटा और किसी प्रकार धोती लपेटकर

कमरे में पहुँचा तो वहाँ का दृश्य देखकर उसका निचला जबड़ा लटककर काँपने लगा। तब तक "क्या हुआ ? क्या हुआ ?" पूछते हुए कई पड़ोसी भी आ गए और हक्के-बक्के होकर इस दृश्य को देखने लगे ।

हुआ यह था कि जब विन्ध्या बाबू ने अपने ही फदे से मुक्त होने के लिए अन्तिम ज़ोर लगाया तो वह छूट तो गए किन्तु झटके के साथ कमरे के एक कोने में पड़े सामान के ऊपर गिर पड़े। सामान में हाइड्रोजन गैस भरा एक सिलिंडर था जिसकी बन्द टोंटी में प्लास्टिक का गुब्बारा लगा था। इन चीज़ों से विन्ध्या बाबू अपने योग से पहले के दिनों में प्रयोग किया करते थे। खाली गुब्बारे पर गिरने और सँभलने के प्रयत्नों में विन्ध्या बाबू का हाथ सिलिंडर की टोटी पर पड़ा। झटके में टोंटी खुल गई और जोर की फिस्स ··स···स···की आवाज़ के साथ गैस गुब्बारे मे भर गई। गुब्बारा भरा तो विन्ध्या बाबू लुढ़कने लगे। उन्होंने सँभलने के लिए काई सहारा पकड़ना चाहा किन्तु इस चक्कर मे भरे हुए गुब्बारे का मुँह टोंटी से निकलकर उनके हाथ में आ गया और वह एक हाथ से गुब्बारे का मुँह पकड़े और दूसरी बाँह, हाथ तथा टाँगों के सहारे गुब्बारे के ऊपर आधे सवार और आधे उसे मशक की भाँति पकड़े हवा मे उठते हुए कमरे की छत से जा लगे। पलक मारते ही यह सब हो गया। विन्ध्या बाबू को केवल एक चीख़ मारने का समय मिला।

नीचे खड़ी भीड़ की समझ में कुछ नहीं आया कि आखिर हो क्या रहा था। कुछ लोग तो "भूत, भूत! चिल्लाने लगे। दो-एक ने विन्ध्या बाबू को साष्टांग दण्डवत किया।

"यह क्या कर रहे हो ?" किसी ने पूछा।

"विन्ध्या बाबू तो देवता बन गए ! जीते-जी स्वर्ग जा रहे हैं।" उत्तर मिला।

"स्वर्ग अभी कैसे चले जाएँगे, ऊपर तो छत है।"

"देखो हमें पता ही नहीं चला कि अपने मुहल्ले मे ही देवता का वास था।"

धार्मिक लोग विन्ध्या बाबू के सामने अपने सच्चे-झूठे पापों का वर्णन करके उनसे पापों के लिए क्षमा माँगने लगे। जो जरा कड़े कलेजे के थे, वे विन्ध्या बाबू को नीचे उतारने के लिए सुझाव देने लगे।

"सीढी लाओ।" एक चिल्लाया।

"नीचे मेज़ रखो और टाँग पकड़कर खींच लो।" दूसरा बोला।

"कमर मे रस्सा डालकर उतार लो।" तीसरे ने सुझाया।

"फ़ायर ब्रिगेड बुलाओ।" चौथे ने राय दी।

लोग इधर-उधर दौड़ने लगे। उनकी जुबाने ओवर टाइम काम कर रही थीं। एक कोने में कोई आदमी फुसफुसाया, "अरे भाई, यह तो पुलिस का मामला है, पुलिस को बुलाओ।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब नही समझे ? अरे, बूढ़ा आत्महत्या कर रहा था।"

"अच्छा ! लेकिन क्यों ?"

"क्यों क्या ? बहू-बेटों से नहीं बनी होगी।"

"इनकी भतीजी कहीं दिखाई नहीं देती। कुछ ऐसी-वैसी बात तो नही है ? आजकल के लड़के-लड़कियों का कोई ठिकाना नहीं।"

"अजी नहीं, यह बात नही है," एक ने भेदभरे स्वर में कहा, "हमारी समझ में तो प्रेम का चक्कर है।"

"प्रेम का चक्कर है ?"

"जी ! ये एक बुढ़िया से नहीं फँस गए थे ? रोज़ उसे रामायण सुनाते थे। कुछ बात हुई होगी तभी तो आजकल कथा बाँचना बन्द हो गया है······"

जब तक लोग कुछ करें, विन्ध्या बाबू के हाथ की पकड़ ढीली हो गई और गुब्बारे से गैस निकलते ही वह लोगों के ऊपर गिर पड़े।

"हाय !" कोई कराहा।

"मार डाला !" कोई चिल्लाया।

एक कोहराम मच गया।

बहुत दिन तक विन्ध्या बाबू के हल्दी-चूना लगाया गया, कपूर के तेल की मालिश की गई और इन्फ्रा रेड लैम्प से शरीर सेका गया।

बनवारीलाल ने फिर विवाह का दिन ठीक करने के लिए पत्र लिखा किन्तु विन्ध्या बाबू की इस बीमारी के कारण बात स्थगित हो गई।

17

विन्ध्या बाबू बहुत दिन तक चारपाई सेकते रहे। जीभ हिलाने मे तो पहले भी कोई कमी नही हुई थी—बल्कि तेज़ी ही आई थी—इधर हाथ-पैर भी हिलाने-डुलाने लगे थे और कभी-कभी अपने आप न केवल उठ-बैठ और खड़े हो जाते थे बल्कि कमरे में थोड़ा-बहुत चल-फिर भी लेते थे। शैया-सेवन के आरम्भ के दिन तो पड़ोसियों और नातेदारों को अपने साहसिक अथवा दुस्साहसिक कार्य का किस्सा सुनाने मे अच्छे कट गए किन्तु ज्यों-ज्यों बीमारी लम्बी होती गई, सुनने वालों की सख्या कम होते-होते शून्य हो गई और विन्ध्या बाबू अकेले पड़े-पड़े उकताने लगे।

एक दिन विन्ध्या बाबू ने अपने सबसे बड़े पोते—बारह वर्षीय चुन्नू—को पुकारा। चुन्नू सामने ही बरामदे मे बैठा एक पुस्तक पढ़ रहा था। किन्तु उसने आवाज़ नही सुनी। विन्ध्या बाबू ने कई बार पुकारा और उनकी आवाज़ भी कड़कदार थी किन्तु चुन्नू पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जब विन्ध्या बाबू विशेष ज़ोर से गरजे तब चुन्नू चौक पड़ा

और जल्दी से उस पुस्तक को अन्य पुस्तकों के बीच में छिपाकर उनके पास आया।

"क्या पढ़ रहा था ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

"इतिहास की पुस्तक।" चुन्नू ने हकलाते हुए उत्तर दिया।

उस दिन तो विन्ध्या बाबू चुप हो गए किन्तु जब चुन्नू—जो साधारणत: सात बजे से पहले सोकर नही उठता था—सवेरे चार बजे से ही पुस्तक पढ़ने लगा और रात को भी बिना कहे, काफी देर तक इस लगन से पढ़ता रहा कि भोजन करने के लिए भी बहुत डाँट-फटकारकर उठाना पड़ा तो विन्ध्या बाबू को सन्देह हुआ। वह किसी प्रकार मेज़ तक पहुँचे और पुस्तकें उलटने लगे। इतिहास तथा भूगोल की पुस्तकों के बीच में दबी हुई एक पतली-सी पुस्तक मिली जिस पर लिखा था—

चन्द्रकान्ता
(उपन्यास)
तीसरा भाग
इक्कीसवाँ संस्करण

विन्ध्या बाबू वहीं से गरजे, "चुन्नू के बच्चे ! यही है तेरी इतिहास की पुस्तक ?"

"यह भी एक प्रकार का इतिहास ही है।" चुन्नू ने डरते-डरते कहा।

चुन्नू को एक धौल जमाते हुए विन्ध्या बाबू ने डाँटा, "एक तो वाहियात किताबें पढ़ता रहता है, ऊपर से झूठ बोलता है। फिर कभी किस्से-कहानी पढ़ते देखा तो खाल खींच लूँगा।"

वह किताब को मेज़ पर पटककर जाने लगे किन्तु कुछ सोचकर बोले, "नहीं, तेरे पास छोड़ने से तू फिर इसे ही पढ़ेगा।" और उन्होंने

पुस्तक अपने तकिये के नीचे रख ली। बात आई-गई हो गई।

एक दिन तकिया हटाते समय पुस्तक नीचे गिर पड़ी। विन्ध्या बाबू को जिज्ञासा हुई कि आखिर उस पुस्तक मे ऐसा क्या था जिसने चुन्नू को भी सीधा कर दिया था। उन्होने नाक के सिरे पर चश्मा चढाकर पुस्तक के पन्ने उलटना आरम्भ किया। थोड़ा-सा पढ़कर विन्ध्या बाबू को बड़ा गुस्सा आया। "यह किताब है या तमाशा" वह बुदबुदाए, "यह भी कोई बात हुई ?" उन्होंने पुस्तक का कुछ अंश बाँचा—

"........पुतली के पेट से ताली निकली। तिलस्मी किताब में लिखे अनुसार कुमार ने ताली में रस्सी बाँधी और रस्सी हाथ मे लेकर ताली को ज़मीन पर घसीटते हुए वह बाग में घूमने लगे (इस बाग़ का हाल हम दूसरे हिस्से में लिख चुके हैं।) एक फ़व्वारे के पास ताली ज़मीन से चिपक गई ..सब लोगों ने उस जमीन को खोदना शुरू किया। दो-तीन हाथ ख़ोदा था कि ज्योतिषीजी ने कहा, "अब पहर-भर दिन बाक़ी रह गया है, तिलिस्म से बाहर होना चाहिए ....."

ज़मीन खोदने पर क्या निकला, यह बात अधूरी ही रह गई। पूरी पुस्तक में तिलिस्म, जादू की पुतली, पत्थर पर सोया आदमी, नक़ाबपोश, बेहोशी लानेवाली सुँघनी अथवा बुकनी, लख़लखा (होश में लाने की दवा), जफील (सीटी), रमल, ऐयारी का बटुवा—जिसमें संसार की सभी चीज़ें एक साथ मिल सकती थीं—हसीन औरतें, पहाड़ की चोटी पर क़ैद अपूर्व सुन्दरी राजकुमारी, राजकुमारी के विरह में पब्लिक में आँसू बहाने वाले वीर राजकुमार, खोह, तहख़ाना, अपूर्व ख़ज़ाना, क्षणभर में सुन्दरी और क्षणभर में साधु बन जाने वाले ऐयार जिनके लिए कुछ भी कर लेना असम्भव नहीं था—यही सब भरा था। इसलिए पहले तो विन्ध्या बाबू झुँझलाए किन्तु धीरे-धीरे

उनको पुस्तक में इतना आनन्द आया कि वह खाना-पीना भूलकर पूरी पुस्तक चाट गए। इससे शान्ति मिलने के बदले अशान्ति बढ़ गई। पुस्तक में बहुत-सी बातें अधूरी रह गई जिनका ज़िक्र या तो पहले और दूसरे भाग में हो चुका था या चौथे भाग में होने वाला था। बहुत देर तक अपने आप से लड़ने के बाद उन्होंने चुन्नू को बुलाकर पूछा, "इसके और भाग कहाँ है ?"

"वे तो मै लौटा आया।"

"आज शाम तक लेकर आना नहीं तो हड्डी तोड दूँगा।" उन्होंने चेतावनी दी।

फिर तो विन्ध्या बाबू ने न केवल 'चन्द्रकान्ता' के चारों भाग पढ़े बल्कि 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के चौबीस भाग, 'भूतनाथ' के सोलह भाग और 'रोहतास मठ' के तेरह भाग भी पढ डाले। इन उपन्यासों के महाराज जयसिह सुरेन्द्रसिंह, कुँवर वीरेन्द्र सिह महाराज और महाराज कुँवर, भूतनाथ, पडित बदरीनाथ, रामनारायण, पन्नालाल, हसीना आदि सुन्दरियाँ जैसे पात्र उनके लिए अपने घरवालों से भी अधिक प्रिय हो गए। ऐयारी और ऐयारो ने उनका मन ऐसा मोह लिया कि उन्होंने ऐयार बनने की ठान ली। भूतनाथ ऐयार को उन्होंने अपना गुरु मान लिया।

विन्ध्या बाबू ने सबसे पहले ऐयारी के बटुए की खोज की। उन्होंने कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली और बनारस की कई कम्पनियों को पत्र लिखे किन्तु जब कहीं भी बटुआ नही मिला तो उन्होंने एक-एक सामान जोड-कर अपना बटुआ स्वयं तैयार करना आरम्भ किया। वेश बदलने का सामान—जटा, मूँछ, दाढ़ी, विभिन्न वस्तु—सीटी, पटाखा चकमक पत्थर, बारूद, कमन्द फेंकने के लिए रस्सी आदि तो सरलता से मिल गए किन्तु बुकनी और लखलखा कहीं नहीं मिले। इनके बदले उन्होंने

क्लोरोफॉर्म तथा अमोनियम हाइड्रॉक्साइड (अमोनिया) की एक-एक शीशी रख ली। थोड़ा-सा छींकनी घास के सूखे फूलों का चूरा (इसको नाक में थोड़ा-सा लगाते ही दनादन छींकें आती हैं) भी रख लिया। जब बटुआ पूरा हुआ तो उसका वजन हो गया डेढ़ मन। एक कुली साथ में ऐयारी का बटुआ ढोता फिरे तो हो ली ऐयारी—यह सोचकर विन्ध्या बाबू ने ऐयारी का विचार छोड़कर आधुनिक जासूसी की ओर ध्यान दिया।

उन्होंने आग्नेयास्त्रों, विषों, ताले तथा तिजोरियाँ खोलने के उपायों, विस्फोटको तथा पुलिस द्वारा अपराधों की खोज में प्रयोग किए जाने वाले उपायो सम्बन्धी तथ्यों पर आधारित प्रामाणिक पुस्तकों से लेकर शर्लक होम्स, हर्क्यूल पाइरॉ, सेक्सटन ब्लेक, पैरी मेमन आदि विदेशी तथा ज्ञानू बाबू जैसे देशी खोजियों तथा जासूसों के कारनामों सम्बन्धी सभी प्राप्य उपन्यास तथा कहानियाँ पढ़ डाले।

एक दिन उनकी पत्नी ने पूछा, "तुम कोई इम्तहान दे रहे हो ?"

"क्या मतलब ?"

"रात-दिन किताबों मे मुँह क्यों दिये रहते हो ?"

"तुम्हारी समझ मे यह नही आयेगा।"

"हाँ-हाँ, मेरी समझ में क्यों आयेगा, समझ का ठेका तो तुमने ले रखा है। पढ़ने वाले हमारे घर में भी थे पर ऐसा पागल कोई नहीं बना।"

"तुम्हारे घर में तो मोटे अक्षरों वाली रामायण बाँचने से आगे कोई नहीं बढ़ा। कोई बहुत ही ज़्यादा पढ़ गया तो 'किस्सा तोता मैना' के पन्ने उलट लिए···" विन्ध्या बाबू कह रहे थे किन्तु पत्नी के तेवर

देखते ही बोले, "बिगड़ती क्यों है भगवान, ज़हर के बारे में पढ़ रहा हूँ।"

"हाय-हाय, किसे दे रहे हो ज़हर ?"

"ख़ुद ही खाऊँगा जिससे तुम-जैसी मूर्ख से छुट्टी मिले।"

"तो इसमें इतना पढ़ने की क्या ज़रूरत है ? चूहे मारने की दवा तो सब जगह मिलती है।" विन्ध्या बाबू की पत्नी भी बिगड़कर उत्तर देती हुई चली गई। विन्ध्या बाबू कुछ देर आग्नेय नेत्रों से उसी ओर देखते रहे, फिर अपनी पुस्तकों मे लग गए।

बिन्द्रा को माँ का बड़बड़ाना बहुत ग़लत भी नहीं था। विन्ध्या बाबू शरीर से पूर्ण स्वस्थ हो चुके थे किन्तु पुस्तकें पढ़ने के पश्चात् उन्हें किसी भी व्यक्ति पर विश्वास नहीं रह गया था। जिसे देखते उसे ही वह अपने जासूसी विज्ञान की तराज़ू पर तोलने लगते। किसी आदमी का निचला होंठ मोटा तथा लटका हुआ होता तो वह उन्हें डाकू मालूम होता। जिसकी आँखे छोटी तथा चचल होतीं उसे वह जेबकतरा समझते, चुस्त तथा चालाक दिखनेवाले आदमी उन्हें गुप्तचर लगते तथा मोटे-ताज़े बात-बात पर खिलखिलाकर हँसने वाले लोग ख़ूनी। सुन्दर, भोली-भाली छुई-मुई-सी दीखने वाली और बात-बात पर जल्दी-जल्दी आँखें झपकाने वाली स्त्री को देखकर वह सोचते कि वह ज़रूर अपने पति को ज़हर देने की योजना बना रही है। बात करते अथवा चलते समय किसी का हाथ जेब के अन्दर होता तो विन्ध्या बाबू आशा करते कि वह व्यक्ति जब हाथ बाहर निकालेगा तो उसके हाथ में या तो पिस्तौल अथवा रिवॉल्वर होगी नहीं तो कम-से-कम छुरा तो होगा ही। शहर में कहीं भी चोरी, डकैती अथवा ख़ून होता तो विन्ध्या बाबू अपने जासूसी के सिद्धान्त भिड़ाने लगते और अपराधी के बारे में अटकलें लगाने लगते। उन्होंने आतशी शीशा (आकारवर्द्धक काँच), अंगुलियों के

निशान स्पष्ट उभारने के उपकरण, कैमरा आदि भी इकट्ठे कर लिए थे। सैकड़ों चोरियाँ, डकैतियाँ और खून बिना हल हुए पड़े थे लेकिन पुलिस न तो स्वयं कुछ करती थी और न विन्ध्या बाबू से सहायता के लिए प्रार्थना करती थी। विदेशों की पुलिस इस मामले में अधिक अच्छी थी। उपन्यासों के अनुसार वहाँ की पुलिस देश के अच्छे जासूसों की सहायता लेती रहती थी। पुलिस वाले कुछ करें या न करें, विन्ध्या बाबू अपना ज्ञान बढ़ाने में लगे ही रहे।

एक दिन विन्ध्या बाबू एक कुत्ते का पिल्ला ले आए। बच्चे बहुत ख़ुश हुए किन्तु उनकी दादी ने आसमान सिर पर उठा लिया। उन्होंने कहा, "पिल्ले ने सारा घर तो भिरष्ट कर दिया पर जो यह रसोई में घुसा तो मैं इसकी टाँग तोड़ दूंगी।"

"फिर अपनी टाँग भी सँभाल कर रखना।" विन्ध्या बाबू ने भी धमकी दी।

बच्चों ने पिल्ले की खिलाई-पिलाई अपने ही ढंग से आरम्भ की। कोई उसे रोटी खिलाता, कोई भात, कोई दूध खिलाता तो कोई चाय पिलाने पर ही उतारू था और कभी-कभी तो वे लोग उसे बिस्कुट, चने, मूँगफली, रेवड़ी, मुरमुरे और केला आदि खिलाने के प्रयत्नों से भी बाज़ नहीं आते थे। पिल्ला भी ट्रेनिंग छोड़कर बच्चों के पीछे-पीछे दौड़ता फिरता। स्कूल तो सभी बच्चों को बुरा लगता है, बच्चे चाहे आदमी के हों या कुत्ते के। एक दिन विन्ध्या बाबू बिगड़े, "अरे गधो ! पिल्ले को अनापशनाप खिलाकर उसे भी अपने-जैसा ही बना देना चाहते हो ? मैं उसकी बुद्धि तेज़ करना चाहता हूँ, सिखाना चाहता हूँ, जिससे वह अपराधियों को पकड़ सके।"

"तो क्या खिलाओगे, हीरे-मोती !" बिन्द्रा की माँ ने पूछा।

''पिल्ले ने सारा घर तो भिरष्ट कर दिया पर जो यह रसोई मे घुसा तो मैं इसकी **टाँग** तोड़ दूँगी ।''

"यह है उसकी ख़ूराक।" विन्ध्या बाबू एक पर्चा पढ़ते हुए बोले, "सबेरे आधा सेर दूध, दो अंडे, एक चम्मच हैलीवट या कॉड लिवर ऑयल (मछली के जिगर का तेल); दोपहर में आधा पाव मॉस, आधा पाव चावल; तीसरे पहर चार स्लाइस डबल रोटी बिना मक्खन; रात को आधा सेर दूध, दो चपाती। जब इतनी ख़ूराक मिलेगी तभी इसकी तन्दुरुस्ती बनेगी।"

"कुत्ते की तन्दुरुस्ती तो बन जायेगी लेकिन आदमियों की बिगड़ जायेगी। अब तक जो दाल-रोटी मिलती है वह भी बन्द हो जाएगी। सिर्फ ताज़ी हवा और पानी पर जीना पड़ेगा।" बिन्द्रा ने कहा।

विन्ध्या बाबू ने इस टिप्पणी को अनसुना कर दिया और पिल्ले की ट्रेनिंग की ओर ध्यान दिया। उसे थोड़े-से आज्ञासूचक शब्दों के अनुसार साधारण काम करना सिखाने के पश्चात् उन्होंने उसे व्यक्तियों को गन्ध द्वारा पहचानने का अभ्यास कराना आरम्भ किया। इसके लिये वह घर में किसी सदस्य का कपड़ा पिल्ले को सुँघाते और फिर पिल्ले को उस व्यक्ति के पास ले जाते किन्तु पिल्ला बड़ा बेवकूफ़ निकला—विन्ध्या बाबू के विचार से उनके पोतों का प्रभाव इसके ऊपर पड़ गया था—वह विन्ध्या बाबू के प्रयत्नों को खेल समझ बैठा और मज़े लेने लगा। विन्ध्या बाबू के परिवार के सदस्यों—विशेषत: उनकी पत्नी को यह खेल फूटी आँखों नहीं भाया। जब घरवालों के दो-चार बनियान, बुशशर्ट, कमीज, पाजामे, साड़ी, ब्लाउज आदि पिल्ले के तेज़ दाँतों पर निछावर हो चुके तो एक दिन बिन्द्रा की माँ ने विन्ध्या बाबू की अनुपस्थिति में पिल्ले की वह पिटाई की कि फिर उसने उस घर की ओर भी आने का नाम नहीं लिया। विन्ध्या बाबू की जासूसी की प्रगति में बाधा पड गई।

जासूसी के प्रोग्राम में दूसरी बाधा पड़ी बनवारीलाल के पत्र से । उसने अल्टीमेटम दे दिया कि यदि एक महीने के अन्दर विवाह नही किया तो बात टूटी समझी जाय । वह अपने लड़के के लिए कोई दूसरी लड़की देख लेगा । बिन्द्रा ने भी कहा, "बाबूजी, महेश कहता था कि उसके पिताजी और अधिक दिन नही ठहरेंगे । वह कुछ बोल नहीं सकता और फिर विवाह तो करना ही है । जितनी जल्दी इस काम से छुट्टी मिल जाय उतना ही अच्छा ।"

"ठीक है । अब कुछ करना ही पड़ेगा ।" विन्ध्या बाबू ने कहा और जासूसी से अस्थायी छुट्टी ले ली ।

18

सरला के विवाह की तैयारियाँ बड़ी धूमधाम से आरम्भ हुईं । बिन्द्रा की माँ सामान जुटाने में लगी लेकिन विन्ध्या बाबू एक ही धुन लगाए रहे, "सबसे पहले स्टेटमेण्ट्स बनाओ ।"

"कैसा अस्टेशमैन ?" उनकी पत्नी ने कहा ।

"मेरा मतलब है लिस्ट बनाओ ।"

"काहे की लिश्ट ?"

"सब चीज़ों की ! मेहमानों की, सामान की ।"

"तुम्हें तो जब देखो फ़ालतू बातें सूझती हैं, काम-धाम कुछ नहीं ।"

"ये फ़ालतू बातें हैं ?"

"नहीं तो बड़े काम की हैं ?"

"ठीक तरह काम करने की बात तुम्हारी समझ में क्यों आयेगी । पीछे सिर पीटती फिरेगी—हाय, यह नहीं आया ! हाय, वह नहीं आया ! हाय, वह छूट गया !"

"हमारे यहाँ भी बड़े-बड़े ब्याह हुए पर ऐसे तमाशे नहीं हुए ।"

"तुम्हारे यहाँ जैसे विवाह हुए हमें पता है । बारातियों को ढंग का

खाना भी नहीं मिला था। वह तो हमारे पिताजी ही थे जो बारात वापस नहीं लाए। और कोई होता......."

"लाये क्यों नहीं बारात वापस, किसी ने रोका था। पहले ही नगदी गिनवा ली थी तुम्हारे पिताजी ने। एक ही काम हो सकता था—या तो रुपया ले लेते या बारात की ख़ातिर करा लेते। क्या करूँ हमारा ज़माना ही ऐसा था कि मुँह नहीं खोल सकते थे। मेरा वश चलता तो साफ़ कह देती कि ब्याह नहीं करूँगी।"

"तो अब छोड़ दो, रोकता कौन है ?"

"हाँ-हाँ, अब तो तुम टालना ही चाहोगे, बुढ़ापे में दिन जो लगे हैं !"

विन्ध्या बाबू ने देखा कि बात ग़लत दिशा में जा रही है इसलिए टालते हुए बोले, "ओफ़्फ़ोह ! जब देखो झगड़ा। तुम से तो बात करना भी मुश्किल है। मैं तो तुम्हारी ही सुविधा के लिए कह रहा था कि लिस्ट बना लोगी तो सिरदर्द से बचोगी।"

"तुम ही क्यों नहीं बना लेते लिस्ट, ख़ाली ही तो बैठे हो।"

"लिस्ट तो बना लूँ, लेकिन बाद में मीनमेख मत निकालना !" विन्ध्या बाबू ने कहा—और अतिथियों की लिस्ट बनाने बैठ गए—बनाने बैठ गए माने और सब लोगों को भी काम से खोने लगे।"

"बिन्द्रा की माँ, अरे मैंने कहा सुनती हो ?

"क्या है ?"

"तुलसीचन्द को भी बुलाना है क्या ?

"उसे तो ज़रूर बुलाना है।" बिन्द्रा की माँ ने कहा।

"क्यों ? उसने तो अपने लड़के के ब्याह में बुलाया नहीं था।"

"यही तो उसकी चाल है। लड़के के ब्याह में तो बुलाया नहीं पर चार लड़कियों के ब्याह किए और चारों में बुलाया। हमारे आठ रुपए

पहुँच चुके है उसके यहाँ।"

"अरे हाँ, नर्मदा के यहाँ किसी को भेजा ?"

"भेजती किसे ? बिन्द्रा को अभी छुट्टी हो नही मिली। छुट्टी मिलेगी तो उसे लाने जाएगा।"

"ठीक है, उधर से ही भातियों (मामा पक्ष के लोग) को भी न्यौता देता आएगा।"

"भातियों को नौतने तो मुझे ही जाना पड़ेगा।" बिन्द्रा की माँ ने कहा, "मै नहीं जाऊँगी तो वे नहीं आएँगे।"

"सरला की ननसाल भी तो किसी को जाना होगा।"

"वहाँ बिन्द्रा चला जायेगा। जब नर्मदा को लाने जायेगा तो उधर ही से सरला के मामा-मामी को भी कह आएगा।"

"वे बुरा नही मानेंगे ?"

"मानेगे तो क्या करूँ ? मै अकेली कहाँ-कहाँ जाऊँगी ? यहाँ का काम कौन करेगा ? अभी कुछ भी तो नहीं हुआ है।"

"अबकी बार मेरी नाक ज़रूर कटेगी।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

"बस तुम बैठे-बैठे यही असगुन विचारा करो। काम नहीं करोगे तो नाक तो कटेगी ही।"

"कर तो रहा हूँ। हाँ, अयोध्या का नाम भी लिखूँ।"

"अजी छोड़ो भी। उसकी सात बेटियाँ कुँआरी बैठी हैं। हमें तो एक में मिलेगा, देना पड़ेगा सात में।"

"लेकिन नर्मदा के ब्याह में तो उनके यहाँ से आया था।"

"दो रुपल्ली आई थीं। सो हमने उसकी बड़ी बेटी के ब्याह में साड़ो-जम्फर दे दिया था। मै किसी का नहीं रखती, हाँ।"

"श्यामबिहारी का नाम लिखूँ ?"

"हाथ जोड़ू तुम्हारे आगे, उसे मत बुलाना। एक को बुलाएँगे तो

पूरे बारह आदमी खाने आएँगे। वैसा बेशरम आदमी तो ढूँढे नहीं मिलेगा।"

"तो किसका नाम लिखूँ ? जिसे कहता हूँ उसी को तुम कटवा देती हो। अरे हाँ, नर्मदा के ब्याह में भी तो लिस्ट बनी थी, वह कहाँ है ?"

"बर्तनों वाले सन्दूक में होगी। हाय, इतनी देर हो गई, अभी कुछ भी नहीं हुआ। अरे चुन्नू, तू ढोली को कह आया ?"

"दादी गया तो था, वह मिला ही नहीं।"

"अब चला जा। आ गया होगा।"

"अभी तो गया था, दादी· · ·" चुन्नू ने प्रतिवाद करना आरम्भ किया किन्तु विन्ध्या बाबू की मूँछे खतरे की झंडी की तरह हिलने लगीं। चुन्नू चुपचाप उठकर चला गया।

"अरे बिन्द्रा ! निमंत्रण-पत्र छप गए ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

"वहीं जा रहा हूँ।" बिन्द्रा ने उत्तर दिया।

"उधर से कुम्हार के यहाँ भी चला जाना। कह देना तीन दिन पहले सारे हुंडे, सकोरे और तश्तरी पहुँचा दे। और देख, ज़रा दर्शनलाल को मेरे पास भेज देना।"

"दरसनलाल को क्यों बुला रहे हो ?" बिन्द्रा की माँ ने कहा।

"अरे पुराना आदमी है, सामान की लिस्ट बनवाएगा और हलवाइयों से उसकी जान-पहचान है। हलवाई भी तो तय करना है।"

"दरसन आएगा तो हो लिया काम। सारे दिन चाय और हुक्का माँगेगा और कुछ नहीं करेगा।"

"तुम तो पता नहीं क्यों उससे चिढ़ी रहती हो। बिन्द्रा के ब्याह में कितना काम किया था उसने ···अरे हाँ, किशोरीलाल को तो भूल ही गया था। उसे तो बुलाना चाहिए।"

"हाँ, उसे बुला लो। उसके घर से बिन्द्रा की बहू को पाँच रुपए मुँह दिखाई मिली थी।"

विन्ध्या बाबू लिस्ट बनाने लगे।

दर्शनलाल ड्योढ़ी से ही शोर मचाता आया, "भाई साहब ! बिन्द्रा ने जैसे ही कहा, वैसे ही भागा चला आ रहा हूँ। इलम कसम, हाथ की चाय भी नहीं पी। वैसे ही रखकर चला आया।"

"चाय हम पिलवाते हैं, बैठो। अरे चुन्नू !......चुन्नू !"

"वह तो ढोली के पास गया है।" मुन्नू ने कहा।

"ज़रा अपनी दादी को तो भेजो।"

बिन्द्रा की माँ आई।

"भाभी, राम-राम।" दर्शनलाल ने कहा।

"अरे ,दर्शनलाल को चाय-वाय पिलाओ।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

"नही, नहीं, रहने भी दो। बेकार भाभी को कष्ट होगा।"

"अरे, पी भी।"

"ओफ़्फोह ! भाई साहब आप तो बेकार तकल्लुफ़ करते हैं। मैं तो कहता था रहने भी दो पर आप मानते ही नहीं। और भाभी भी तो बिना चाय पिलाए मुझे जाने ही नहीं देती ··भाभी, ज़रा चीनी ज़्यादा डालना।"

"अरे तेरी, भाभी तेरी आदत जानती है।" विन्ध्या बाबू हँसे।

"हें·· हें · हें···कैसे याद किया, भाई साहब ?"

"अरे, ब्याह के सामान की लिस्ट बनानी है।"

"किसके ब्याह की ?"

"सरला के।"

"गगन की बिटिया ? अच्छा ? हमें पता ही नहीं चला।"

"अरे, अभी ही तो ठीक किया है।"

"कहाँ कर रहे हो व्याह ?"

"लड़का मेरठ का है, वैसे यहीं काम करता है।"

"कहाँ ?"

"मेरे ही दफ़्तर में है।"

"अच्छा-अच्छा, बड़ी ख़ुशी की बात है।"

"बस तुम्हीं लोगों का सहारा है।"

"आप चिन्ता न करें। भगवान् की दया से सारा काम बड़े मज़े में हो जायेगा।"

"देखो भाई, बेटी के व्याह का मामला है। इज़्ज़त बच जाये किसी तरह।"

"सब ठीक होगा, भाई साहब।"

"हाँ, तू ज़रा हलवाई ठीक कर देना।"

"आज ही व्याना (अग्रिम) दे दूँगा।"

"जरा हलवाई को बुला लाना। लिस्ट बना लेंगे कि क्या-क्या सामान आयेगा।"

"अजी हलवाई क्या बतायेगा, मै बताता हूँ क्या सामान आयेगा। कितने आदमी जीमेंगे ?" दर्शनलाल ने पूछा।

"यह तो तेरी भाभी ही बताएगी। बिन्द्रा की माँ ! अजी मैंने कहा···।"

"क्या है ?" बिन्द्रा की माँ ने पूछा।

"देख लो तुम्हारे ही कारण सारी देर हो रही है। कब से कह रहा हूँ कि मेहमानों की लिस्ट बना लो लेकिन तुम सुनती ही नहीं।"

"मैं खाली बैठी हूँ ?"

"खाली बैठें तुम्हारे दुशमन, तुम तो हर समय भरी रहती हो।"

"क्या ऊट-पटांग बोलते रहते हो ?"

"अरे, मेहमानों की लिस्ट नही बनेगी तो सामान कैसे आयेगा ?"

"तुम तो बेबात का झगड़ा लेकर बैठ जाते हो। पाँच सौ आदमियों के खाने का परबन्ध तो कम से कम होगा ही।"

"और ज़्यादा से ज्यादा ?"

"सौ-पचास और हो जाएँगे।" विन्द्रा की माँ ने सरलता से कहा।

"विन्ध्या बाबू ने कागज़-कलम पटक दिये।" लो, कर लो इनके साथ काम ! इनके लिए सौ आदमियों का अन्तर कोई बात ही नहीं। लिस्ट क्या ख़ाक बनेगी !"

"अजी, हम तो शहर के बीच में हैं, कोई जंगल में थोड़े ही हैं ; और सामान चाहिएगा तो और मँगा लेगे।"

"अच्छा तो बोलो घी कितना आएगा ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

"चार कनस्तर।" बिन्द्रा की माँ ने पट से उत्तर दिया।

"चार कनस्तर ! दिवाला निकल जाएगा। छः रुपए सेर घी मिला तो कितना बैठेगा ?"

"छः रुपए सेर क्या चीज़ है, भाई साहब ?" दर्शनलाल ने पूछा।

"देसी घी।"

"देशी घी खिलाकर किसी को मारोगे क्या ?"

"क्या मतलब ?"

"अजी, आजकल सबको आदत पड़ी है वनस्पति घी खाने की। देसी घी खिलाओगे तो लोग बीमार पड़ जाएँगे।"

"दर्शन, तुझमें यह बड़ी ख़राब बात है कि हर समय हँसी करता रहता है।"

"हँसी नहीं करता, भाई साहब, ठीक कहता हूँ, इलम कसम। तुम्हें अपने पैसे फेकने हों तो फंको। मिलेगा बनस्पति ही, चाहे सुद्ध घी के नाम

से लो, चाहे बनस्पति के नाम से। आप एक तोला भी अच्छा घी ला दें तो नाम बदल दूँ। अजी, आजकल तो सुद्ध घी की फैक्टरियाँ चल रही हैं जहाँ घुइयाँ, आलू, स्याही सोख कागज़ और वनस्पति से असली घी तैयार होता है।"

"ठीक ही तो कहता है दरसन।" बिन्द्रा की माँ ने कहा।

"तुम लोग मेरी नाक ज़रूर कटवाओगे।"

"घर मे कोई कारज-परोजन हो तो तुम सबसे पहले नाक कटाने बैठ जाते हो।" बिन्द्रा की माँ झल्लाई।

"तो और क्या कहूँ? अभी कुछ भी नही हुआ। न अभी कपड़ा आया, न ज़ेवर बने, न मेहमानों की लिस्ट बनी, न सामान आया। नाक नही कटेगी तो और क्या होगा?"

"सान्ति भाई साहव, सान्ति। परेसानी की कोई वात नही। ईसवर चाहेगा तो शब काम शम्पूरण हो जाएगा।" दर्शनलाल ने कहा, "मै बोलता जाता हूँ, आप लिखते जाइए।"

किसी प्रकार रो-गाकर अतिथियों की सूची वनी, सामान आया, निमंत्रण-पत्र बँटे, दर्ज़ी और सुनार से दो-दो बातें हुई, नौकर-कहार जुटे, घर की सफ़ाई हुई, शामियाने तने, बन्दनवार लगी, बारात के ठहरने का प्रबन्ध हुआ और विन्ध्या वाबू हर रोज़ चिल्लाते रहे कि इस बार उनकी नाक साबुत नहीं बचेगी।

बारात आई। उधर बारात का बैंड बज रहा था और इधर लाउडस्पीकर पर फिल्मी गाना हो रहा था—"छोड़ गए बालम, हाय अकेला छोड़ गए।"

किसी प्रौढ़ व्यक्ति ने लक्ष्य किया और ग्रामोफ़ोन बजाने वाले लड़के को डाँटकर गाना बन्द करवाया गया। स्त्रियों ने मंगल गीत गाए—"रानी कौसल्या री, राम तो पूत जणो री···" पंडित ने मंत्र पढ़े-

"मंगलम् भगवान् विष्णो मंगलम् गरुड़ध्वज ......" दान-दक्षिणा के लिए अड़े, आधुनिक नाइयों ने अपने मुफ़्त के नेग माँगे और कन्यादान हो गया। लोगों ने कहा, "अच्छी शादी कर दी विन्ध्या बाबू ने।" इसके बाद वास्तविक तथा गुप्त टिप्पणियाँ आरम्भ हुई—

"रायते में नमक ज़्यादा था।"

"पूरियाँ ठंडी थीं।"

"लड़का तो अच्छा है।"

"दान-दहेज तो अच्छा ही दिया।"

"ज़ेवर तो सब लड़की की माँ का था।"

"बिन्द्रा की बहू के गले में बहुत कम ज़ेवर था।"

"अरी तो बहू काम कर रही थी कि ज़ेवर दिखाने बैठती।"

"आय-हाय, ज़ेवर शादी-व्याह में नहीं पहनेगी तो कब पहनेगी!"

"लड़का अच्छा है।"

"करलक है किसी दफ्तर में। हमारी जसोदा का मालिक अफसर है।"

"सुना है घर-बार अच्छा है।"

"चलो अच्छा हुआ, बेचारी बिना माँ-बाप की लड़की अच्छे घर चली गई।"

"हम तो कहें स्याबस (शाबास) है ताऊ-ताई को। आजकल अपने ही नहीं पलते, दूसरों के बच्चों को पालना तो और भी मुसकिल है।"

"अरी तो सगे भाई की लड़की है, वह कौन-सी पराई है?"

"कमला की माँ, चन्दरसेखर भी तो तुम्हारे सगे देवर का लड़का था। उसकी माँ ने तुमसे कितना कहा कि उसे अपने यहाँ रखकर पढ़ा लो पर तुमने नहीं रक्खा। तुम्हारे देवर तो खरचा देने को भी तैयार थे।"

"तो तुम्हीं ने रख लिया होता।" कमला की माँ तुनककर बोली।

गोष्ठी बिखर गई।

विन्ध्या बाबू और बिन्द्रा की माँ सबेरे से उपवास किये हुए थे। कन्यादान हो गया, फेरे हो गए, बाराती-घराती सब जीम चुके तो लोगों ने कहा, "विन्ध्या बाबू, आप भी उपवास तोड़ लीजिए।"

"नहीं, मैं नहीं खाऊँगा। मेरी इच्छा नहीं है।"

"नहीं, नहीं, कुछ तो खाना ही पड़ेगा।"

"भई, मेरी बिलकुल इच्छा नही है।"

"इच्छा कैसे नही है, भाई साहब ?" बनवारीलाल ने कहा, "मैं अपने सामने आपको खिलाऊँगा।"

"हाँ साहब, अब तो विन्ध्या बाबू को खाना ही पड़ेगा। समधी का कहना कैसे टाल सकते हैं ?"

विन्ध्या बाबू भोजन करने बैठे। बनवारीलाल ने जेब से एक पुड़िया निकाली और विन्ध्या बाबू के सामने दो हरी मिर्च रखते हुए बोला, "भाई साहब, मिर्च लीजिए।"

विन्ध्या बाबू पहचान गए। वही कलसिया मिर्च थी। मुसकराकर बोले, "लेकिन अब तो यह बेटी के घर की चीज़ है। भाई, मैं तो पुराने विचारों का आदमी हूँ, लड़की के घर की चीज़ कैसे खा सकता हूँ ?"

"भाई साहब, यह मिर्च सबके बस की नहीं, कलसिया है।" बनवारीलाल हँसता हुआ बोला।

"यह बात है ? तो यह लो रुपया, तुम्हारी इन दो मिर्चों का दाम।" कहकर विन्ध्या बाबू ने दोनों मिर्चें उठाकर एक साथ मुँह में रख लीं और कर्र-कर्र करके चबा गए। मुँह से एक बार सी भी नहीं

की यद्यपि आँखों और नाक से पनाले बहने लगे। वनवारीलाल का मुँह आश्चर्य से खुल गया।

"यह क्या, भाई साहब ?" उसने कहा।

"समधी जी, बेटी वाला हारकर ही जीत सकता है।"

"क्या मतलब ?"

"मैं तुम्हें मैच में हरा देता तो तुम मेरे समधी कैसे बनते ?"

"पहले तो भाई साहब थे, फिर समधी हुए और अब आपको गुरु भी मान लिया।" बनवारीलाल उनसे लिपटता हुआ बोला।

बैंड, लाउडस्पीकर, बेसुरे मंगल गीत, हँसी और आँसुओं के बीच सरला विदा हो रही थी। विदा होते समय विन्ध्या बाबू ने भरे गले से बनवारीलाल से कहा, "समधी जी, आज से यह तुम्हारी बेटी हुई। बेचारी बिना माँ-बाप की बच्ची है। अब तुम्हीं लोग इसके माँ-बाप हो। आज गगन होता···" विन्ध्या बाबू फफककर बच्चों की भाँति रो पड़े।

बैंडवालों ने फ़िल्मी धुन बजाई, "गोरी बनके दुल्हन, चली पी से मिलन ··" और बारात चल पड़ी।

19

एक दिन विन्ध्या बाबू जब अपनी वृद्ध गोष्ठी में पहुँचे तो सबकी ज़ुबान पर एक ही बात थी, "वर्माजी के घर चोरी हो गई !"

"सामान तो बहुत नहीं गया, फिर भी चोरी तो चोरी ही है।"

"वह तो कहो जल्दी ही घरवाले जग गए नहीं तो सब समेटकर ले जाते।"

"सुना है वर्माजी की पोती के ब्याह के लिए जो सामान लिया गया था उसमें से भी कुछ गया है।"

"हाँ, कुछ साड़ियाँ गई हैं।"

"और आश्चर्य यह है कि पुलिस वालों की गश्त के चलते यह सब हुआ।"

उस दिन के वार्तालाप से विन्ध्या बाबू को जैसे भूली हुई याद आ गई। उन्होंने अपना जासूसी का धधा फिर आरम्भ किया। एक बार फिर 'अपराधों को खोज' पर खाज होने लगी। सरला के विवाह की धमा-चौकड़ी के पश्चात् सूनापन छाया हुआ था, उसे विन्ध्या बाबू अपने जासूसी अध्ययन तथा प्रयोगों से भरने लगे।

एक दिन आधी रात को मुहल्ले में 'चोर, चोर' का शोर मचा और "घबराना मत, आते है", "पकड़ो, भागने न पाये" की आवाज़ें आने लगीं। किसी ने यह दिखाने को कि उसके पास बन्दूक है, एक हवाई फ़ायर भी कर दिया। सारा मुहल्ला बिजली के प्रकाश से जगमगाने लगा लेकिन किसी-किसी पड़ोसी ने अपनी खुली खिड़कियाँ भी बन्द कर दीं और दरवाज़ों पर अन्दर से ताले लगा दिए। जिस घर से 'चोर, चोर' की आवाज़ आई थी उसके सामने भीड़ इकट्ठी हो गई।

"क्या चोरी गया ?"

"सोने का जड़ाऊ हार।"

"चार हज़ार का बताते हैं।"

"अजी नहीं, नक़ली था।"

"नक़ली नहीं, असली था। हमने देखा था। चार हज़ार का तो नहीं, हाँ दो-तीन हज़ार तक का रहा होगा।"

"अजो इनके यहाँ क्या चोरी होगी, अपने यहाँ चोरी हुई थी तो पूरे पच्चीस हज़ार का माल गया था।"

"तो उसमें आपका क्या गया ? वह तो सरकार का माल गया।"

"क्या मतलब ?"

"चीनी के ब्लैक में जो कमाया था उस पर इन्कम टैक्स तो दिया नहीं था।"

"आपको इसलिए जलन हो रही है कि आपको कमाने का मौक़ा नहीं मिला।"

"अजी हम तो ब्लैक के पैसे पर थूकते भी नहीं।"

"थूको तो तब, जो मिले।"

"अरे भाई, यह झगड़ने का बखत नहीं है, सान्ति से काम लो।"

"सुनो जी, यह पता लगाओ कि और भी कुछ चोरी गया है।"

"और तो कुछ पता नहीं चलता।"

"यो तो बड़ा बुरा हुया।"

"क्या मतलब ?"

"अजी मैं तो यूँ कहूँ अक चोरी हुई यो बड़ा बुरा हुया।"

"अभी तो चोरियाँ ही हो रही हैं। कुछ दिन में दिन दहाड़े गर्दनें कटेंगी। पुलिस कुछ करती ही नहीं है।"

"करे कैसे, चोरों से साठ-गाँठ जो रहती है।"

"किसी पुलिस अफ़सर के चोरी हो तब देखो कितनी जल्दी चोर पकड़ा जाता है।"

"गश्ती पुलिस कहाँ है ?"

"पड़ी होगी किसी जुए के अड्डे पर। किसी को थाने दौड़ाओ रपट लिखाने।"

"दौड़ाने से कुछ नहीं होगा। सबेरे से पहले तो कोई रपट लिखने से रहा। मेरी घड़ी चोरी हो गई थी, मैं रपट लिखाने थाने गया। सालों ने दो घंटे खड़ा रखा, फिर भी रपट नहीं लिखी। लिखना किसका, किसी ने सीधे मुँह बात भी नहीं की।"

इसके बाद सब ने पुलिस से संबंधित अपने निजी अथवा सुने हुए

कटु अनुभव सुनाए। तभी विन्ध्या बाबू अपने जासूसी के उपकरणों से लैस होकर घटनास्थल पर पहुँचे। हाथ में आकारवर्द्धक शीशा, एक कंधे पर कैमरा, दूसरे पर अंगुलियों के निशान उठाने के उपकरण उन्हें इस वेशभूषा में पहले तो कोई पहचाना ही नहीं। किसी ने कहा, "पुलिस आई।" किसी ने कहा, "खुफिया है।" पहचानने पर सब ने आश्चर्य से कहा, "अरे विन्ध्या बाबू, यह क्या स्वांग भरा है ?"

विन्ध्या बाबू ने अपने जासूस बनने का हाल बड़े प्रिय ढंग से सुनाया। बेचारे कार्य आरम्भ करने हो वाले थे कि पहुँच गई पुलिस और उसने भीड़ को घर से बाहर निकालकर दरवाज़े पर पहरा बैठा दिया। विन्ध्या बाबू बड़ी अकड़ से अन्दर जाने लगे। पुलिस के सिपाही ने कहा, "ए बुड्ढे ! कहाँ जा रहा है ?"

विन्ध्या बाबू तड़पकर बोले, "जुबान सँभालकर बोलो। जानते नहीं किससे बात कर रहे हो ?"

"मुझे तो जानने की ज़रूरत नहीं लेकिन तुम यहाँ से तुरन्त नहीं गए तो तुम्हें अभी पता लग जायगा कि तुम किससे बात कर रहे हो।" सिपाही ने कहा।

विन्ध्या बाबू ने छोटे आदमी के मुँह लगना उचित नहीं समझा। इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस होता तो उसे कुछ कहते भी।

पुलिस ने घरवालों तथा घर के नौकर से प्रश्न करके तथा घर की जाँच करके जो सूचना प्राप्त की उसका सार यह है : हार घर की मालकिन के सन्दूक में बन्द था और सन्दूक की चाबी मालकिन के पास रहती थी—तब भी थी। चाबी चोरी नहीं गई थी। सन्दूक सोने के कमरे में था और सोने से पहले मकान मालिक ने अपने हाथ से दरवाज़ा बन्द करके चटखनी लगाई थी। यह सच था कि बाहर से दरवाज़े को कई बार हिलाने से चटखनी खुल जाती थी किन्तु दरवाज़ा

उतना हिलाये जाने से उन लोगों की नींद निश्चित रूप से खुल जाती उन्होंने बाहर के आदमी की दी हुई कोई चीज़ नहीं खाई थी प्रसाद के अतिरिक्त (नौकर ने बताया) जो साधु बाबा ने दिया था। मकान मालिक और मालकिन को पूरा विश्वास था कि प्रसाद खाने से उन्हें बेहोशी अथवा किसी भी प्रकार की अस्वाभाविक नींद नहीं आई थी। रात को मकान मालकिन की नीद हवा के ठंडे झोके से खुली। जागने पर उन्होंने दरवाज़ा खुला पाया। पहले तो वह समझी कि उनके पति बाहर गए होंगे किन्तु जब उन्हें पास के पलंग पर सोते पाया तो घबराकर उन्हें जगाया। बिजली जलाकर स्वभावत: सबसे पहले जेवर का सन्दूक देखा और उसे खुला पाया।

प्रसाद देने वाला साधु ? साधु का नाम-पता कुछ भी ज्ञात नहीं था। दो-तीन बार मकान मालिक की अनुपस्थिति में आया था। उसकी बताई हुई बहुत-सी बातें सच थीं। कुछ पूजा-पाठ कराने की बात थी इसी सम्बन्ध में आता था और कुछ पूजा आरम्भ भी हो गई थी।

नौकर लगभग आठ साल से था और पूर्णत: विश्वासपात्र था। घरवालों को किसी भी जाने-पहचाने व्यक्ति पर सन्देह नहीं था

पुलिस जाँच-पड़ताल करके चली गई। विन्ध्या बाबू ने फिर अपना काम आरम्भ करना चाहा किन्तु तब तक हाल पूछनेवालों की भीड़ घिर आई। लाचार होकर वह अपना-सा मुँह लेकर लौट आए।

कोतवाली में इन्स्पेक्टर मेघनाथ सिंह ने कहा, "मेरा विश्वास है कि चोर, हत्यारा और आग लगानेवाला घटनास्थल पर अवश्य लौटता है। गम्भीरसिंह, ज़रा पता लगाओ कि कोई नया साधु किसी अड्डे पर आया है।"

रात के लगभग बारह बजे थे। विन्ध्या बाबू ने अपने ऐयारी के

बोरे में से जटा, मूँछ-दाढ़ी, गेरुवे वस्त्र, कमण्डल, चिमटा और रुद्राक्ष की माला निकालकर साधु का वेश बनाया और एक जेबी टार्च तथा आकारवर्द्धक शीशा लेकर चोरी वाले मकान की ओर चल दिये। अपने स्वाभाविक रूप में जाने से दिन में तो दो बार धक्के खा चुके थे, फिर रात को कौन उनसे बात करता। किन्तु साधु के लिए क्या दिन और क्या रात। घर के अन्दर नहीं जा सकते थे तो क्या हुआ, बाहर ही से कुछ प्रारम्भिक खोज कर लेंगे—विन्ध्या बाबू ने सोचा।

चारों ओर सन्नाटा था। इधर-उधर आहट ले और आँखें गड़ा-गड़ाकर देखने के पश्चात् विन्ध्या बाबू ने टार्च जलाई और खिड़कियों के नीचे पैरों के निशान तथा खिड़कियों पर अंगुलियों के चिह्न खोजने लगे। एक खिड़की का निरीक्षण करके दूसरी के पास जाकर ज्यों ही उन्होंने टार्च जलाई, एक भारी हाथ उनकी गुद्दी पर पड़ा और इन्स्पेक्टर मेघनाथसिंह का गर्जन रात के सन्नाटे में गूँज उठा।

"उल्लू के पट्ठे! अब भागकर कहाँ जाएगा! निकाल हार, नहीं तो हड्डियों का सुरमा बना दूँगा।"

मिनटों में भीड़ इकट्ठी हो गई। इन्स्पेक्टर और पब्लिक ने हज़ार सवाल पूछे किन्तु विन्ध्या बाबू चुप, इस डर से कि कहीं कोई पड़ोसी आवाज़ न पहिचान ले। इन्स्पेक्टर ने घर के नौकर को बुलाकर पूछा, "यही है वह साधु का बच्चा?"

नौकर के मना करने पर इन्स्पेक्टर ज़रा चकराया। फिर बोला, "अरे यह साला भी चोरों के ही दल का होगा। यह यहाँ नहीं बोलेगा। थाने में ले जाकर इससे बात करूँगा।"

इन्स्पेक्टर की मुद्रा देखकर घर की मालकिन चिल्लाई, "नहीं-नहीं, पुलिस जी। मारना मत। साधु को मारने से पाप लगेगा।"

"आप चिन्ता न करें, बहनजी, मै तो इससे बड़े प्यार से

पूछूंगा।" इन्स्पेक्टर ने कहा किन्तु उसका मुख और बन्द होती-खुलती मुट्ठियाँ देखकर किसी को यह समझने में भूल नहीं हुई कि इन्स्पेक्टर का प्यार कैसा होगा।

विन्ध्या बाबू पुलिस स्टेशन ले जाये गए। यद्यपि भीड़ को थाने के बाहर ही रोक दिया गया था, फिर भी कुछ लोग तो गवाह के रूप में अन्दर चले गए और जो अन्दर नहीं जा सके वे खिड़की-दरवाज़ों में से झाँकने लगे। विन्ध्या बाबू को कमरे में मेज़ के सामने खड़ा करके इन्स्पेक्टर ने दो हट्टे-कट्टे सिपाहियों को उनके पीछे खड़ा कर दिया और स्वयं कुर्सी पर बैठता हुआ बोला, "अब बताओ बेटा हार कहाँ है ?"

विन्ध्या बाबू चुप रहे। इन्स्पेक्टर ने आँख से इशारा किया। पीछे खड़े एक सिपाही ने विन्ध्या बाबू के सिर पर एक झापड़ दिया। झापड़ लगते ही विन्ध्या बाबू की नक़ली जटा गिर पड़ी। कुछ क्षण के लिए इन्स्पेक्टर, सिपाही और दर्शक हक्के-बक्के रह गए। दूसरे सिपाही ने हाथ बढ़ाकर प्रसिद्ध ऐयार, भूतनाथ के चेले, विन्ध्या बाबू की दाढ़ी भी नोंच फेंकी। बाहर खड़ी भीड़ में तहलका मच गया। 'विन्ध्या बाबू चोर ! विन्ध्या बाबू चोर !' का शोर चारों ओर गूँज उठा। एक आदमी ख़बर करने उनके घर दौड़ गया।

इन्स्पेक्टर ने लोगों से पूछा,' 'कौन है यह ?"

"अजी ये तो अपने मुहल्ले के विन्ध्या बाबू हैं।"

"क्या ज़माना आ गया है। इतना इज़्ज़तदार आदमी चोर।"

"अजी किसी के माथे पर थोड़े ही लिखा रहता है। ऊपर से बड़े भगत और ईमानदार बनते थे। भीतर यह हाल।"

"इन्हीं महाशय के कारण एक बार मेरी नौकरी जाते-जाते बची। मैं बच्चों के लिए दफ़्तर से थोड़े-से काग़ज़ पेंसिल ले आया। यह

महाशय तब हमारे ऑफ़िस सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। जनाब, इन्होंने मेरी रिपोर्ट कर दी और मुझे निकलवाने पर तुल गए। वह तो कहिए साहब भला आदमी था नहीं तो इन्होंने अपनी तरफ़ से मुझे बर्बाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। और ये धर्मावतार अपने ही मुहल्ले में चोरी करते हैं।"

"इनके रंग-ढंग तो बहुत दिन से ख़राब थे। एक बार एक बुढ़िया से इश्क़ लड़ा बैठे थे।"

विन्ध्या बाबू ने सोचा, इतनी बेइज़्ज़ती तो हो ही गई। सफ़ाई देकर और हँसी क्यों उड़वाई जाय। वह चुप रहे। इन्स्पेक्टर ने कहा, "यह अपने आप नहीं बताएगा। इसके घर की तलाशी ली जाय।"

तलाशी में विन्ध्या बाबू का ऐयारी का बटुआ और जासूसी की पुस्तकें पुलिस के हाथ लगीं। फिर क्या था! मेघनाथसिंह का सन्देह और भी पुष्ट हो गया। घर वालों ने लाख समझाया कि विन्ध्या बाबू शौक़िया ऐयार और जासूस थे लेकिन वह क्यों मानने लगा, बल्कि और भी चिढ़ गया।

उसने कहा, "जो काम हम नहीं कर सकते उसे यह सठियाया हुआ बूढ़ा करेगा।" और विन्ध्या बाबू को उनके बटुवे के साथ फिर थाने की ओर ले जाने लगा। बिन्द्रा की माँ की सहन-शक्ति की सीमा पार हो गई। उन्होंने चूल्हे से एक बुझी हुई लकड़ी ली और इन्स्पेक्टर के ऊपर झपटती हुई गरजी—

"देखती हूँ कौन इनको हाथ लगाता है। एक-एक का मुँह झुलस दूँगी। छाती पर चढ़कर ख़ून पी जाऊँगी। हम पर चोरी लगानेवालों की जुबान में कीड़े पड़ें। उनके खसम मरें....उनके बच्चे मरें.... उनके...."

"बस करो, बहनजी!" वह औरत, जिसका हार चोरी गया था,

"देखती हूँ कौन इनको हाथ लगाता है। एक-एक का मुँह झुलस दूँगी।"

चिल्लाई, "भगवान् के लिए मेरे बच्चों को मत कोसो। मेरा हार मिल गया।"

"हार मिल गया ?" सबने आश्चर्य से पूछा।

"हार मैंने ही छिपा रखा है।"

"कहाँ ?"

"चलो, बताती हूँ।" उसने कहा और सब उसके पीछे चल दिए।

पूजाघर के एक कोने में फ़र्श खोदकर उसने एक हंडिया बाहर निकाली। हंडिया में पूजा की सामग्री के बीच हार रखा था। उसने निकालकर दिखाया।

"लेकिन आपने ऐसा क्यों किया ?" इन्स्पेक्टर ने कड़े स्वर में पूछा।

"एक साधु आया था," उस स्त्री ने रोते हुए कहा, "उसने कहा कि पूजा करने से ज़ेवर दुगुने हो जाएँगे। तीन दिन तक गड़ाकर रखने होंगे। और रोज़ पूजा होगी। तीसरे दिन विशेष पूजा करके निकाले जाएँगे। कल पूजा करके साधु बाबा निकालते।"

"अगर अपने आप रखा था तो झूठ-मूठ चोरी का शोर क्यों मचाया?"

"क्या करती ? साधु बाबा ने कहा था कि तीन दिन से पहले निकालने से सारा ज़ेवर मिट्टी हो जायगा लेकिन मैंने जिस दिन हार दबाया उसी शाम को इन्होंने (अपने पति की ओर संकेत) कहा कि अगले दिन किसी पार्टी में वही हार पहनकर जाना पड़ेगा। मैंने बहुतेरा टाला पर जब यह नहीं माने तो मुझे यह नाटक रचना पड़ा।"

"विन्ध्या बाबू न होते तो आपका हार कल तक दबा रहता और किसी समय पूजा करते-करते आपके साधु महाराज लेकर चम्पत हो जाते। फिर कभी ऐसी ग़लती मत कीजिएगा। हाँ, हार निकाल-

कर हंडिया फिर दवा दीजिए। उस चोर साधु को आज ही रास्ता दिखाता हूँ।" इन्स्पेक्टर ने कहा।

विन्ध्या बाबू को गाली देने वाले तो चुपचाप खिसक गए थे। बाकी लोगों ने उनसे क्षमा माँगी किन्तु विन्ध्या बाबू इस कांड से इतने विरक्त और लज्जित हुए कि वह उसी समय से तीर्थ-यात्रा पर जाने की तैयारी करने लगे।

21

विन्ध्या बाबू का तीर्थ-यात्रा पर जाने का निश्चय तो अटल था किन्तु कहाँ जायँ, यह निश्चित नहीं हो रहा था। कभी सोचते बद्रीनाथ जायँ किन्तु जाड़े के दिनों में जा नहीं सकते थे। फिर सोचते कि हरि-द्वार, प्रयाग, पुरी, द्वारिका अथवा रामेश्वरम् चले जायँ किन्तु प्रत्येक के संबंध में कुछ न कुछ कठिनाई आ जाती थी। उनका तीर्थ-यात्रा पर जाने का विचार पूरे मुहल्लेभर को ज्ञात हो गया। लोगों को आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि बेटी के विवाह के पश्चात् तीर्थ करने की परम्परा-सी है। खबर विन्ध्या बाबू के मित्र शर्माजी तक भी पहुँची। एक दिन वह आए और बोले, "भाई साहब, सुना है आप तीर्थ करने जा रहे हैं?"

"सोच तो रहा हूँ।"

"कहाँ जाने का विचार है?"

"अभी तो कुछ ठीक नहीं किया।"

"गंगा सागर का स्नान आ रहा है, वहाँ क्यों नहीं चले जाते?"

"गंगा सागर है कहाँ?"

"वहीं जहाँ गगा समुद्र में मिलती है। कलकत्ता से सत्तर-अस्सी मील दूर है।"

"लेकिन भाई, वह जगह तो बहुत दूर है। बड़ी परेशानी होगी

श्रौर ख़र्च भी बहुत होगा।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

"परेशानी तो बस यहाँ से कलकत्ता जाने तक की है, उसके बाद के प्रबन्ध का ज़िम्मा मेरा।"

"आप क्या करेंगे ?"

"जानते नहीं गणेश आजकल कलकत्ता में ही है।"

"अरे हाँ, वह तो इन्कम टैक्स ऑफ़िसर है न कलकत्ता में ?"

"हाँ जी, क्लास वन अफ़सर है। अभी तो ट्रेनिंग ले रहा है।"

ट्रेनिंग पूरी होने पर पता नहीं कहाँ नियुक्ति हो इसीलिए कहता हूँ कि गंगा सागर चले जाओ। ऐसा मौक़ा बार-बार नहीं आएगा।"

"हाँ, गंगा सागर का महात्म्य तो बहुत सुना है।" विन्ध्या बाबू ने कहा।

"अजी बड़ा प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। जब राजा सगर के सहस्र पुत्रों ने कपिल मुनि को तंग किया तो ऋषि ने क्रोध में आकर उन्हें अपने शाप से भस्म कर दिया। उन लोगों की नरक गति हुई। राजा सगर के वंश में आगे चलकर राजा भगीरथ हुए। उनसे कहा गया कि यदि अपने पूर्वजों का उद्धार करना चाहते हो तो किसी प्रकार गंगा जी को राज़ी करो कि वह पृथ्वी पर जाकर अपने जल से सगर-पुत्रों को शाप-मुक्ति दें।"

"हाँ,-हाँ, राजा भगीरथ ने घोर तपस्या करके गंगाजी को राज़ी कर लिया कि उसके पूर्वजों का उद्धार करने वह पृथ्वी पर जायँगी किन्तु स्वर्ग से उतरती गंगा का वेग कौन सँभाले ? इसलिए गंगाजी के कहने से भगीरथ ने फिर तपस्या की और शिवजी को इस बात के लिए राज़ी किया कि वह गगा माता के वेग को अपने मस्तक पर सँभाल ले। इस प्रकार गंगा महादेवजी की जटा के मार्ग से पृथ्वी पर आई और सगर के किनारे बसे, कपिल मुनि के आश्रम में भगीरथ के

पूर्वजों की अस्थियाँ अपने जल से स्पर्श कर उन्हें शाप-मुक्त कर सागर में मिल गई—हाँ, शर्माजी, बचपन से यह कहानी सुनता आ रहा हूँ। कहते हैं 'और तीरथ बार-बार, गंगा सागर एक बार', इच्छा तो बहुत है लेकिन…"

"लेकिन क्या ?"

"ख़र्च…"

"भाई साहब, आपकी बुद्धि को पता नहीं क्या हो गया है। अरे जीवनभर पैसे के पीछे हाय-हाय करते रहे। अब सब झंझटों से मुक्त हो गए, फिर भी माया-मोह में पड़े हैं। आज आँख बन्द हो जाय तो इस प्राविडेण्ट फंड, इन्श्योरेंस आदि का क्या होगा ? इस जीवन की बहुत सोच चुके, अब कुछ अगले जन्म की भी सोचो।" शर्माजी ने कहा। जब से शर्माजी ने नौकरी से अवकाश प्राप्त किया था, वह अत्यन्त धर्मपरा-यण बन गए थे। उन्होंने अपने बेटे गणेशचन्द्र शर्मा, एम० ए०, आई० आर० एस० (इण्डियन रेवेन्यू सर्विस) इन्कमटैक्स आफ़िसर क्लास वन (प्रोबेशनर) को पत्र लिखा (यद्यपि सरकारी परिपत्र के अनुसार नाम के पीछे आई० आर० एस० नहीं लिखा जाना चाहिए था और गणेश को अपने नाम के पीछे एम० ए० तथा प्रोबेशनरी इन्कमटैक्स ऑफिसर और वह भी क्लास वन का पुछल्ला लगाए जाने से बड़ी चिढ़ थी किन्तु शर्माजी पर उसके कहने-सुनने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था)। पत्र की भूमिका में शर्माजी ने लिखा था कि संसार में धर्म सबसे बड़ी वस्तु है और हमारे देश में सदा से ही धर्मपालन को मनुष्य के तुच्छ जीवन से अधिक महत्त्व दिया गया है और हमारे देशवासियों में भी, जिनकी संरक्षता में धर्म है, वे शर्माजी की जाति के लोग, अर्थात् ब्राह्मण हैं। यह ब्राह्मणों का ही प्रताप है कि सूर्य अब भी पूर्व से ही और ठीक टाइम पर निकलता है, पृथ्वी अपनी धुरी पर ही घूमती है, आदि। जब-जब देश में

ब्राह्मणों की मान-मर्यादा तथा अधिकारों पर आघात होते हैं, संसार में दुर्घटनाएँ होती हैं, भूचाल आते हैं, नदियाँ अपने मार्ग बदल देती हैं, अकाल पड़ते है, महामारी फैलती है। इसलिए ब्राह्मणों को अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए धर्म पालन करना चाहिए तथा धर्म-पालन में दूसरों को सहायता देनी चाहिए। जो धर्म-कार्य में सहायता करता है, उसका पुण्य धर्म करनेवाले से कम नहीं होता।

इस भूमिका के पश्चात् शर्माजी ने विन्ध्या बाबू की गंगा सागर यात्रा की अभिलाषा का वर्णन किया और गणेश को समझाया कि चूँकि उनकी इस अभिलाषा-पूर्ति में सहायक बनकर गणेश का इहलोक तथा परलोक सुधरने की पूर्ण आशा थी, अतएव इस शुभ कार्य में उसका पूर्ण सहयोग न केवल वांच्छित बल्कि आवश्यक था।

शुभ मुहूर्त में विन्ध्या बाबू ने सपत्नीक कलकत्ता के लिए प्रस्थान किया। बिन्द्रा की माँ को साथ लाने के कई कारण थे—एक कारण तो धार्मिक ही था। विवाह मंत्रों के अनुसार विन्ध्या बाबू के प्रत्येक धार्मिक कृत्य में बिन्द्रा की माँ का पचास प्रतिशत भाग था और यों भी बिना पत्नी के सहयोग के किसी सधवे पुरुष का धार्मिक कृत्य पूर्ण नहीं माना जाता। रामचन्द्रजी को अश्वमेघ यज्ञ करते समय सोने की सीता अपने बाएँ अंग में बैठानी पड़ी थी। बिन्द्रा की माँ को जाना ही पड़ा। वैसे भी यह सोचा गया कि स्वर्ग में पुण्य का बँटवारा करते समय पृथ्वी की चाजों के बँटवारे के भाँति झगड़े, गाली-गलौज, मार-पीट आदि की नौबत न आए, उसके लिए दोनों साथ जायँ यही अच्छा है। इनके अतिरिक्त एक और भी कारण था। वह था आजकल के नए जोड़ों का व्यवहार। बूढ़ों का कहना था कि जब ये कल के छोकरे अपनी बहुओं को अपने साथ हर जगह नचाए फिरते हैं तो उन्होंने ही कौन-से पाप किये थे जो अलग-अलग रहें। सारांश यह कि विन्ध्या बाबू बिन्द्रा की माँ

के साथ कलकत्ता पहुँच गए।

गणेश ने कलकत्ता से गंगा सागर तक के जहाज़ के तीन वापसी टिकट ख़रीदे और चार दिन की छुट्टी के लिए प्रार्थना-पत्र दे दिया। नियत दिन सवेरे चार बजे उठकर गणेश अपने मुहल्ले के ताऊजी और ताई को साथ लेकर हुगली के किनारे बने चांदपाल घाट पर पहुँच गया जहाँ से गंगा सागर के लिए जहाज़ खुलने वाले थे।

पुण्यार्थियों की भीड़ का क्या कहना। कुछ अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि भीड़ में फँस जाने वाले कुछ बूढ़े स्त्री-पुरुष पुण्य-लाभ करने के लिए कलकत्ता से अस्सी मील दूर स्थित गंगा सागर तक पहुँचने की देर सहन न कर सके और घाट के प्रवेश-द्वार के बाहर उस अपार जन-समूह को चीख़ता-चिल्लाता, धक्का-मुक्की करता छोड़ अपने बनानेवाले के पास अपने धर्म का लेखा-जोखा समझने चले गए। उनकी ऐहिक लीला की इति अगले दिन अख़बारों की इन संक्षिप्त तथा अनाम पंक्तियों से हो गई—

"कल चाँदपाल घाट के सामने गंगा सागर जाने के इच्छुक सात यात्री भीड़ में दबकर मर गए। सरकार शीघ्र ही इस विषय में जाँच करेगी।"

विन्ध्या बाबू, बिन्द्रा की माँ और गणेश तीनों भीड़ में इस प्रकार जमे हुए थे कि अपने हिलने-डुलने पर भी उन्हें अधिकार नहीं रह गया था—भीड़ आगे धकेलती तो आगे पहुँच जाते, सामने से पुलिस के कई-कई जवान एक मोटी लाठी से भीड़ को पीछे धकेलते तो वे लोग पीछे खिसक जाते, दाईं ओर से रेला आता तो बाईं ओर पहुँच जाते। कुली का कहीं पता नहीं था। कुछ देर तक तो वह अपना बिस्तर पहचानते रहे, फिर सामान के जंगल में वह भी खो गया। इतनी ही तसल्ली थी कि कुली भी भीड़ में ही फँसा होगा। वह भी जाएगा तो आगे ही

जाएगा। किसी प्रकार ये लोग भी गेट पारकर जेटी पर पहुँच गए और भाग्य से कुली भो मिल गया। आदमी भी शरीफ़ था। वे लोग जहाज़ पर स्थान खोजने लगे।

जहाज़ क्या था, जूट तथा जानवर ढोने वाली पाँच गहरी नावों के बीच एक छोटा-सा स्टीमर फँसा दिया गया था जो नावों को खींच कर ले जाने वाला था। स्टीमर पर केवल दो-एक मारवाड़ी परिवार अपने पूरे घर के सामान के साथ बैठे थे—बिस्तर, ट्रंक, मिठाई और मूड़ी के टोकरे, पानी की सुराहियाँ, बर्फ़, चाय, दूध के थर्मस, क़ीमती कैमरे और ट्रान्ज़िस्टर रेडियो, बच्चे नाइलोन की पारदर्शी बुशशर्टों में और महिलाएँ बड़े-बड़े फूलों वाली छपी साड़ियों में, आधा घूँघट काढ़े। ये फ़र्स्ट क्लास के यात्री थे।

नावों के यात्री थर्ड क्लास के थे। जो लोग पहले पहुँचे थे उन्होंने डेक पर अपने बिस्तर ख़ूब फैला-फैलाकर लगा लिए थे और खाने की पोटलियाँ निकालकर बैठ गए थे। पीछे आने वाले लोग नावों के गर्भ के अंधेरे, गर्म तथा अत्यन्त बदबूदार वातावरण में एक-दूसरे से टकराते, चिल्लाते, झगड़ते, मनाते, घुड़कियाँ सुनते-सुनाते अपना स्थान बनाने लगे।

नीचे जाते ही वहाँ की गर्मी तथा बदबू से बिन्द्रा की माँ को चक्कर आने लगा। गणेश बिस्तर लेकर ऊपर डेक पर आया और फैलकर लेटे हुए यात्रियों की विनती-चिरौरी करने लगा।

—अठे जगा कोनी।

—हामको माथा में बोइठेगा न क्या ?

—बइटने को इल्ले।

अंत में एक पंजाबिन बुढ़िया ने कहा, "माई नूँ लै आ पुत्तर, जग्गा हो जाऊ, रल-मिल के बै जावाँगे।" गणेश को एक बिस्तर फैलाने योग्य

स्थान मिल गया। बिन्द्रा की माँ लेट गई। विन्ध्या बाबू पालथी मार और गणेश उकड़ूँ बैठ गए।

नावों के ज़रा-सा हिलते ही बोल गंगा माई की जयऽऽ! का गगन-भेदी नारा लगता किन्तु नावें आगे न बढ़तीं। अंत में एक विशेष ज़ोर के नारे से खीझकर स्टीमर ने भोंपू से ऊँची आवाज़ निकाली और झक-झक-घरड़-घट्ट करता हुआ घाट से आगे बढ़ा। लोग जैसे पागल हो उठे। दे नारे पर नारे। गणेश ने कानों मे अँगुलियाँ डाल लीं और आधा घटे बाद निकालीं किन्तु तब भी यदा-कदा लगते नारों को सुनकर उसे विश्वास हो गया कि तेंतीस करोड़ अठासी हज़ार देवी-देवताओं में से थोड़े ही ऐसे अभागे बचे होंगे जिनकी जय अथवा 'जै' नहीं बोली गई होगी।

जय-घोष समाप्त हुए तो महिलाओं ने सहगान आरम्भ कर दिये। ड्राईंग रूम में सोफे पर बैठकर ग्राम्य गीतों और लोक-गीतों के संकलन करने वाले विद्वानों को पाँच मिनट भी उस जहाज में बैठ-कर लोक-गीत सुनने पड़ते तो वे गीतों का संकलन छोड़कर घास खोदना कहीं कम कष्टप्रद कार्य समझते।

गणेश थोड़ी देर तो चारों ओर के शोर-शराबे, गन्दगी और दुर्गन्ध से कुढ़ता रहा, फिर उसने सोचा कि वैसे कुढ़ता रहा तो उसकी लाश ही घर पहुँचेगी, और उस समय उसकी बिलकुल इच्छा नहीं थी कि वह फटे हुए नोट की भाँति पब्लिक सर्कुलेशन से उठा लिया जाय, इसलिए उसने दार्शनिक शान्ति को अपनाया। अपने चारों ओर देख-कर उसने विन्ध्या बाबू से कहा—

"अच्छा ताऊजी, ये जो इतने ग़रीब लोग गंगा सागर जा रहे हैं, इससे इन्हें क्या लाभ? वह देखिए, उस बुढ़िया के शरीर पर एक धोती मात्र है और उस पर भी हज़ार पैबन्द लगे हुए हैं। वह आदमी

देखिए, ऐसा लगता है कि उसे जीवन में भरपेट खाना एक बार भी नही मिला है। उधर वह दमे का बीमार है। जितना पैसा ये लोग इस यात्रा पर लगा रहे हैं उतना यदि ये कपड़े भोजन और औषधि पर लगाते तो क्या अधिक अच्छा न होता ? आखिर क्यों ये लोग इस बात को नहीं समझते ? क्या मिलता है इन्हें ऐसा करके ?"

"मन की शान्ति।" विन्ध्या बाबू ने उत्तर दिया।

"यदि ये अच्छा खाते, पहनते और स्वस्थ रहते तो क्या इन्हें अधिक शान्ति नहीं मिलती ?"

"बेटा गणेश, यदि अच्छा खाने-पहनने और अच्छे स्वास्थ्य से ही सब-कुछ मिल जाता तो ये फर्स्ट क्लास के मुसाफिर क्यों कहीं जाते ? तुम्हारी कही चीज़ों में से तो इन्हें कोई कमी नहीं मालूम होती। वास्तव में बात यह है बेटा, कि मनुष्य को जीने के लिए केवल ये ही चीज़ें नहीं बल्कि कुछ और भी चाहिए। वह कुछ और ही धर्म है। धर्म केवल एक विश्वास की बात है बेटा, यही विश्वास जो आदमी को सब प्रकार की परिस्थितियों में जीवित रखता है, कठिनाईयों से लड़ने का साहस देता है।"

"इस धर्म से इन लोगों का तो कोई लाभ नहीं होते देख रहा हूँ। इनके धर्म से लाभ हो रहा है उस दूकानदार को जिसने दो पैसे के सन्तरे के दाम बढ़ाते-बढ़ाते अब चार आने कर दिए हैं और काली फीकी चाय का आधा प्याला तीन आने में बेच रहा है। या जहाज़ के डाक्टर को हो रहा है जो औरों को चक्कर और मचली से बचने के लिए दवा देने के बदले चीनी का शर्बत और सन्तरा खाने को कह रहा है किन्तु जिसके परिवार की स्त्रियाँ डिस्पेंसरी की ग्लूकोज़ की चाय पी रही है।"

"धर्म सोना बनाने की स्पर्शमणि नही है। धर्म मन की शान्ति का साधन है। मन की शान्ति और आर्थिक स्थिति में कोई संबंध नहीं।

वह बूढ़ा, जिसके शरीर पर कपड़े नहीं हैं, जो भूखा दिखाई देता है किन्तु आँखें मूँदे प्रेम से भजन गा रहा है, क्या तुम्हें बहुत दुखी प्रतीत हो रहा है, बेटा ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा।

गणेश चुप रहा। वह युवक था। पढ़ा-लिखा था। जिन स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों की वह उपज था उनकी शिक्षा में धर्म, विश्वास, मानसिक शक्ति का कोई स्थान नहीं था। वह चुपचाप बैठा सोचता रहा।

एक दिन, एक रात तथा उसके बाद का आधा दिन व्यतीत होने पर जहाज़ ने लंगर डाला। लकड़ी के दो तख़्तों की सीढ़ी लगाई गई और सब अपना-अपना सामान लेकर उतरे। गणेश ने भी सामान उतारा और किनारे सूखी रेत पर रख दिया। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, नावें और उनके मस्तूल दिखाई पड़ते थे। गणेश की आँखें उस दोपाए को ढूँढ रही थीं जो नगरों में कुली के नाम से विख्यात है। उसने एक नाववाले से पूछा—

"क्यों भाई, यहाँ कोई सामान उठानेवाला मिलेगा ?"

"बाबू, इसे भी कलकत्ता समझे हो ?" उसने बड़ी सहानुभूति से कहा।

गंगा सागर मेले का स्थान वहाँ से डेढ़ मील दूर था। गणेश ने अपने फेफड़े को फुलाया और तीनों यात्रियों का सम्मिलित बिस्तर उठाकर चल पड़ा। विन्ध्या बाबू और बिन्द्रा की माँ डेढ़ दिन और एक रात के अनवरत कीर्तन के बावजूद हाथों में मोटी-मोटी पोटलियाँ लेकर पीछे-पीछे चल पड़े।

उन लोगों का गन्तव्य एक सरकारी दफ्तर का तम्बू था। बात यह थी कि जब गणेश ने कलकत्ता में अपने एक परिचित बंगाली सज्जन, जो किसी दूसरे केन्द्रीय सरकारी दफ़्तर में काम करते थे, से

अपनी गंगा सागर यात्रा का ज़िक्र किया था तो उन्होंने कहा था कि उनके दफ्तर की एक शाखा मेले में प्रति वर्ष जाती थी और उस वर्ष जो बाबू मुख्य प्रबन्धक होकर जा रहे थे वह उनके घनिष्ठ मित्र थे। उनको वह ख़बर कर देंगे और "फिर गणेश बाबू का आर किछू भाबने (सोचने) नहीं होगा।" वहाँ चार-पाँच तम्बू होंगे, चपरासी होंगे, फर्नीचर होगा—यानी ऐश ही ऐश रहेगा। दो-चार दिन बाद उन्होंने बताया कि उन्होंने अपने परिचित महाशय को तार और टेलीफोन दोनों कर दिए थे कि "गोणेश बाबू गोंगा शागोर जाता हाय।" और वह यह बताना भी नहीं भूले थे कि गणेश क्लास वन सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट सर्वेण्ट था।

तो विन्ध्या बाबू, बिन्द्रा की माँ तथा शर्माजी का गणेश एम० ए० आई. आर. एस. इन्कम टैक्स ऑफिसर, क्लास वन, पीठ पर डेढ़ मन का विस्तर लादे डेढ़ मील का गंदा मार्ग चलकर कई स्थान पर पूछ-ताछ करने के बाद तम्बुओं के एक समूह के पास पहुँचे किन्तु उनको देख किसी के मन में हर्ष नहीं उपजा, न नैनन में सनेह प्रकट हुआ। कोई उनका स्वागत करने आगे नहीं बढ़ा। गणेश ने अपने परिचित के परिचित का नाम लेकर पूछा। एक अधेड़ आयु के बंगाली सज्जन ने गणेश को उपेक्षा की दृष्टि से देखकर कहा, "बोलिये।"

गणेश ने उन्हें एक पत्र दिया। उन्होंने पत्र पर एक उड़ती-सी दृष्टि डालकर, एक बार चश्मे में से गणेश को घूरकर कहा, "आप तो बोहूत देरी कार दीया। हाम सोचते थे जो आप नहीं आयगा।"

गणेश बैठ गया। उसने मन में सोचा—देर हो चाहे सबेर, आज उठने की बात हुई तो यहाँ से लाश ही उठेगी। उसने डरते-डरते पूछा, "क्या बात है? जगह नहीं है क्या?"

"जायगा, जायगा तो आभी शब भोरती हाय। आप आगाड़ी नहीं

आया येही बास्ते हम सोचा जे आप नहीं आएगा।"

हिन्दी में मतलब यह था कि सब तम्बू भरे थे। किसी में बड़े साहब का परिवार था, किसी में उनका अपना, किसी में उनके परिचित थे तो किसी में चपरासी और उनके परिचित। "फिर भी," उन्होंने कहा, "सोचने का कोई बात नाहीं हाय। हाम बेबस्था (व्यवस्था, प्रबन्ध) कोरेगा। आपको चिन्ता होने का दरकार नहीं हाय।"

जिस तम्बू में ये लोग बैठे थे उसका बाहर का भाग तो दफ़्तर था और अन्दर के भाग में बाबू का परिवार ठहरा हुआ था। दुर्भाग्य से बिन्द्रा की माँ दोनों भागों को जोड़नेवाले द्वार के बीचों-बीच बैठी थी। उनका वहाँ बैठना ही एक शीत-युद्ध का कारण बन गया। वे लोग बातें कर ही रहे थे कि एक अधेड़ आयु की बंगाली महिला शरीर पर केवल एक गीली धोती लपेटे, हाथ में जल का लोटा लिए आई और द्वार के पास ठिठक गई। विन्ध्या बाबू एण्ड कम्पनी को देखते ही उसके माथे पर बल पड़ गए। वह बोली तो कुछ भी नहीं किन्तु उसने अपनी मुद्रा से यह स्पष्ट कर दिया कि उसे इन लोगों का आना तनिक भी अच्छा नहीं लगा था। कुछ क्षण खड़ी रहकर वह बुदबुदाई।

बिन्द्रा की माँ इशारा समझकर थोड़ा-सा खिसक गई और जाने योग्य रास्ता छोड़ दिया किन्तु रास्ता इतना नहीं था कि जाने वाले के कपड़े न छुए जायें। बंगाली महिला खड़ी रही और अब की बार कुछ असहिष्णुता से बड़बड़ाई। बिन्द्रा की माँ का मुँह तमतमा गया किन्तु वह थोड़ा और खिसक गई। विन्ध्या बाबू तब ऊँघ रहे थे, इसीलिए उन्होंने इस नाटक को नहीं देखा।

एक तम्बू से चपरासियों को विस्थापित किया गया। यह कार्य सरल नहीं हुआ क्योंकि पहले तो चपरासी उस तम्बू से ही नहीं, उस

स्थान विशेष से भी हिलने को राज़ी नहीं हुए और बाबू तथा चपरासियों में गर्मागर्म बहस होने लगी ।

"आमरा कैनो जाबो ? एरा के ? गभर्नार ? (हम क्यों जायँ ? ये कौन हैं ? गवर्नर ?) चपरासियों ने कहा । विन्ध्या बाबू उनकी बातें तो नहीं समझे किन्तु मुद्राएँ समझने में उन्हें कठिनाई नहीं हुई । उन्होंने कहा, "झगड़िए नहीं । हम किसी को कष्ट देना नहीं चाहते । हमारा बक्स यहाँ रख लीजिए । हम लोग बाहर सो जाएँगे ।" और उस भारी बिस्तर को उठाने का प्रयत्न करने लगे । एक युवक चपरासी बोला, "बूड़ो शीते मोरे जाबे, एशो हे (बूढ़ा ठंड में मर जाएगा, चलो) ।"

उन लोगों को वह तम्बू मिल गया । बिन्द्रा की माँ चुप ही रही । विन्ध्या बाबू ने शान से कहा, "तुम लोग मनोविज्ञान नही समझते ।"

बिन्द्रा की माँ फिर भी चुप रहीं । विन्ध्या बाबू ने चिन्ता से पूछा, "क्या बात है, बिन्द्रा की माँ ?"

"उस बंगालिन की यह मज़ाल कि मेरा अपमान करे !"

"अरे, कुछ हुआ भी ?"

"मुझसे ऐसी छूत जैसे मैं···"

"भंगन मत कह देना, ताई ।" गणेश ने कहा, "नहीं तो क़ानून के पंजे में आ जाओगी । अब किसी को भी अछूत समझना अपराध है ।"

"मुर्दे खानेवाले इतनी छूआछूत करें !"

"कौन कहता है बंगाली मुर्दे खाते हैं ?" विन्ध्या बाबू ने पूछा ।

"मछली खाते है और मछली मुर्दे खाती है ।" बिन्द्रा की माँ ने कहा और उनका तर्क किसी ने काटा नही यद्यपि गणेश ने सोचा कि

अनाज और तरकारी कैसी-कैसी खाद से उगते हैं, किन्तु वह कुछ नहीं बोला।

"अरी भागवान धीमे बोल, सुन लेंगे तो इसी तम्बू में सिर का तीरथ हो जायगा।" विन्ध्या बाबू ने कहा किन्तु बिन्द्रा की माँ शान्त नहीं हुई। बड़बड़ाई, "मैंने भी मज़ा नहीं चखा दिया तो कायस्थ की बच्ची नहीं !"

वास्तव में बिन्द्रा की माँ कायस्थ की बच्ची सिद्ध हुई। हुआ क्या कि और सब बातें तो ठीक हो गई किन्तु रसोई एक ही थी। बंगाली बाबू का कहना था कि सवेरे आठ बजे से बारह बजे तक और संध्या चार बजे से नौ-दस बजे तक उनका चाय-भोजन आदि चलेगा। उसके बाद जो समय बचे उसमें विन्ध्या बाबू का परिवार भोजन बना सकता था। उन्होंने दबी आवाज़ में यह भी सूचना दे दी कि भोजन बाज़ार में भी मिल सकता है। बेचारे बाबू अच्छे अभिनेता नहीं थे। भीतर से महिला कंठ में प्रॉम्पटिंग की स्पष्ट ध्वनि आ रही थी।

विन्ध्या बाबू ने कहा, "बिन्द्रा की माँ दो ही दिन की तो बात है। हम लोग पेट पर गंगा जल में भिगाई ठंडे पानी की पट्टी बाँधकर पड़े रहें तो क्या हर्ज है। तीर्थ पर उपवास करने से पुण्य ही होगा।"

"स्वर्ग भी जल्दी पहुँचेंगे।" गणेश ने कहा।

इस प्रस्ताव से विरोधी कैम्प में कुछ खलबली मच गई। गणेश ने अपनी टूटी-फूटी बंगला में समझाया कि उसके ताऊजी और ताई जी बहुत ही धर्मात्मा हैं और किसी के हाथ का छुआ हुआ तो क्या, परछाई पड़ा हुआ भी भोजन करने को तैयार नहीं।

"मिस्टर शर्मा, आप तो ब्राह्मोण हाय ना ?"

"हाँ," गणेश ने कहा। उसने यह नही कहा कि उन तीन मूर्तियों में केवल वह अकेला ब्राह्मण था और शेष दो कायस्थ। इसे ठीक झूठ

नहीं कहीं जा सकता। राजनीतिक सत्य कह सकते हैं।

यह सत्य है कि ज्ञात होने के पश्चात् बंगाली बाबू अपनी गिन्नी (गृहिणी) की इच्छा के बावजूद तीन ब्राह्मणों (?) की हत्या का पाप अपने सिर लेने के लिए तैयार नहीं हुए। गंगा सागर का जल भी उनका यह पाप धोने में समर्थ नहीं होता। अन्त में समझौता यह हुआ कि रसोई में एक रेखा खीचकर भारत-पाकिस्तान बना लिए जायँ, रेत खोदकर दो चूल्हे बना लिए जायँ और दोनों परिवार अपनी-अपनी सीमा में रहें। विन्ध्या बाबू का परिवार चूँकि शरणार्थी परिवार था इसलिए द्वार के पास से द्वार की तीन चौथाई (चौड़ाई) बंगाली बाबू के परिवार के लिए राजमार्ग छोड़कर शेप रसोई का एक तिहाई भाग विन्ध्या बाबू के परिवार के लिए रेखाओं से घेर दिया गया। बाबू ने इतनी कृपा की कि अपने चपरासी से लकड़ी और पानी मँगवा दिया। इसी बीच विन्ध्या बाबू, बिन्द्रा की माँ और गणेश स्नान करने चले गए।

जहाँ तक दृष्टि जाती थी, जल ही जल था। उस स्थान से कई-कई मील ऊपर तथा सामने जल के ऊपर पाखाना तैर रहा था। कई लाख यात्री वहाँ एकत्रित थे। भाटा के समय मेले के आस-पास की बालू सूखी रहती है। लोग वहीं बैठ जाते हैं। जब ज्वार आता है तो पानी सारा पाखाना बहा ले जाता है किन्तु वह रहता है किनारे के जल पर ही छाया हुआ। गणेश पानी में एक बार घुसकर निकल गया। विन्ध्या बाबू और उनकी पत्नी ने उस गन्दे, खारे घोल में स्नान करके पुण्य-लाभ किया। बाद में दो-दो बाल्टी नल के पानी से नहाए।

रसोई में पहले गंगा सागर का घोल-विशेष छिड़का गया, फिर अपनी सीमा के अन्दर गर्म राख और अंगारे छिड़ककर शुद्धि की

गई। बिन्द्रा की माँ ने दाल पका ली और भात बनाने की तैयारी करने लगीं।"

जब दाल पक चुकी थी किन्तु चावल चूल्हे पर चढ़ाया ही गया था, उसी समय बंगाली महिला ने अपनी रसोई सँभालनी आरम्भ कर दी थी। इस कार्य के लिए बार-बार भीतर-बाहर आना-जाना पड़ता था और मार्ग लक्ष्मण-रेखा को छूता हुआ जाता था। चूँकि बंगाली महिला उस क्षेत्र की महारानी थी, इसलिए रेखा का बन्धन उसके ऊपर लागू नहीं था। उसका सीमोल्लंघन अनधिकार नहीं कहा जा सकता था। फलस्वरूप उसका पैर कभी रेखा के ऊपर, कभी थोड़ा-सा उसके अन्दर पड़ जाता था। बिन्द्रा की माँ प्रत्येक बार बड़-बड़ा उठतीं किन्तु बंगालिन के मुख का भाव तथा कंठ के भीतर से बाहर आने के लिए उतावली गुर्राहट लक्ष्य करके कुशल इसी में समझती थी कि अपनी रसोई की सीमा घटातो जातीं। विन्ध्या बाबू तटस्थ रहे। औरत ज़ात से क्या बोलते। इधर इंच-इंच करके घेरा छोटा होने लगा, उधर बंगालिन महिला का राजमार्ग तथा बिन्द्रा की माँ का कायस्थी क्रोध प्रशस्त होने लगा। आखिर उनकी सहन-शक्ति की सीमा पूरी हो गई और उसका प्रदर्शन बड़े नाटकीय ढंग से हुआ।

जैसे ही बंगाली महिला का पैर चौथी रेखा पर पड़ा, बिन्द्रा की माँ ने एक हुँकार भरी और अपने नंगे हाथों से चावल की पतीली उठाकर कई गज़ दूर बाहर फेंक दी। उनके मुख से सरस्वती की वीणा की लहरी मुखरित होने लगी। यद्यपि उस समय वीणा हिन्दी में बज रही थी किन्तु उर्दू को छोड़कर भारत की सभी भाषाओं का मूल संस्कृत होने के कारण बंगालिन महिला को समझने में कठिनाई नहीं हुई। वैसे 'धर्मभ्रष्ट' शब्द उर्दूवाले भी समझ सकते हैं।

वह महिला आशा से अधिक प्रभावित हुई। भात की यह

नाटकीय फ़िज़ूलख़र्ची अपने ढंग की अनोखी थी। उसकी ओर से संधि प्रस्ताव आया, "आपको तो धोर्मो बहूत हाय न ?"

"तुमने क्या समझा था ?"

"किछू ना, माने हम भी ब्राह्मोण हाय।"

"कोई भी हो, हम किसी का छुआ नहीं खाते। छूना तो दूर, एक बच्चा भी रसोई में घुस आए तो हम भोजन नहीं करते।"

"ओ तो जोरूर बात। हाम को भी धोर्मो बहूत हाय। हमारा इधर में जो साड़ी में चान (स्नान) होता हाय ना, उसको बोदली नहीं करने होगा। ओही में रान्ना (खाना पकाना-राँधना) करने होगा।"

फिर दोनों महिलाएँ बड़े सद्भाव से धर्मान्धता की तराजू पर अंध-विश्वास के बट्टे रखकर धर्म को तोलने लगीं। बीच-बीच में विन्ध्या बाबू भी कोई टिप्पणी कर देते। बंगाली महिला ने बहुत प्रयत्न किया कि वह अपने धर्म को कोई विशेष प्रभावशाली बात कहे किन्तु भात की फेंकी हुई पतीली उसके मस्तिष्क पर कुछ ऐसी छा गई थी कि उसका इन्फ़ीरियोरिटी कॉम्प्लेक्स (लघुता की भावना) गया नहीं। उसके बाद का दिन बड़ी शान्ति तथा सद्भाव से व्यतीत हुआ।

हज़ारों अन्य यात्रियों की भाँति विन्ध्या बाबू ने अपनी दाढ़ी, मूँछ और सिर पर उस्तरा फिरवाया अर्थात् धार्मिक भाषा में 'भद्दर' हुए। इस प्रकार मुंडकर बहुत-से यात्री लौटे। कुछ जेब भी मुडवाकर लौटे और कुछ तो लौटे ही नहीं। नावों के साथ गंगा में डूब मरे।

बिन्द्रा की माँ और विन्ध्या बाबू यात्रा से सकुशल घर लौट आए। बड़ी धूमधाम से मुहल्ले-टोले में उनका स्वागत हुआ। सत्यनारायण की कथा हुई, भोज हुआ और विन्ध्या बाबू को काफ़ी दिनों के लिए समय काटने का मसाला मिल गया।